चतुर्थ अध्याय : 'तोड़ो कारा तोड़ो' : अंतर्वस्तु

i. आध्यात्मिकता और साधना पक्ष

नरेंद्र कोहली समकालीन हिन्दी साहित्य के रचनाकार हैं। जिन्होंने पौराणिक विषयों पर उपन्यासों के साथ ही विवेकानंद के जीवन को आधार बनाकर भी उपन्यासों की रचना की है जो छः खण्डों में लिखी गई है। स्वामी विवेकानंद भारत के एक ऐतिहासिक पुरुष होने के साथ साथ आध्यात्मिक पुरुष भी हैं। स्वामीजी 19वीं शताब्दी के ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनका आविर्भाव ही आध्यात्मिक कार्य के लिए हुआ है। उनमें आध्यात्मिक विषयों के प्रति एक आकर्षण बचपन से ही जाग चुका था। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "याज्ञसेनी की वह करूण पुकार सुनकर कृपालु श्री कृष्ण गदगद हो गए। तब शैया तथा आसन छोड़कर, दया से द्रवित होकर पैदल ही दौड़ पड़े"।[1]..

महाभारत के इस प्रसंग को सुनकर बालक नरेंद्र अपनी माता भुवनेश्वरी देवी से जो कुछ पूछता है उसके विषय में लेखक नरेंद्र कोहली इस प्रकार लिखते हैं।"माँ क्या पुकारने पर भगवान सचमुच आ जाते हैं" ?[2].. बचपन की इस एक जिज्ञासा से ही यह समझ में आता है कि बचपन से ही उनके मन में अध्यात्म और भगवान के प्रति एक आकर्षण जाग उठा था। इतना ही नहीं इसी तरह बातचीत करते हुए बालक नरेंद्र को यह ज्ञात होता है कि जीवन में भगवान का आगमन होता है। तब बालक नरेंद्र अपनी माँ से पूछता है कि "तुमने कभी उन्हें पुकारा है माँ ? तब माँ ने उनसे कहा था कि संकट के अवसर पर उन्हें पुकारा था। तब बालक नरेंद्र पूछता है कि "तो वे आए ?" तब माता भुवनेश्वरी देवी ने कहा कि भगवान स्वयं तो नहीं आए क्योंकि माता ने भगवान की कामना नहीं की थी बल्कि पुत्र की कामना की थी और उन्होंने पुत्र के रूप में नरेंद्र को भेज दिया था। माता की इस बात को सुनकर बालक नरेंद्र जो कहता है वह द्रष्टव्य है "तुमने भूल की माँ ! तुम्हें भगवान के दर्शनों की याचना करनी चाहिए थी। पुत्र तो सब के होते हैं ; किंतु भगवान के दर्शन किसने किए हैं"।[3]..

यानी कि अपने बचपन से ही स्वामी विवेकानंद एक भिन्न प्रकृति के मानव थे। ऐसा लगता है कि भगवान के साथ मनुष्य के नित्य काल के सम्बंध को वे छोटी उम्र में ही समझ चुके थे।

स्वामी विवेकानंद के साधनात्मक जीवन की शुरुआत उनके बाल्य जीवन में ही हो चुकी थी। लेखक लिखते हैं कि "नरेंद्र की आँखें पूरी खुल गईं, किंतु शरीर अभी पर्याप्त स्थिर था। उसके चेहरे पर गम्भीरता ही नहीं, अधिकार का भाव था। उसने आदेशात्मक स्वर में कहा ध्यान में विघ्न मत डालो माँ ! मुझे यहाँ अकेला छोड़ दो"।[4].. आलोच्य पंक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बचपन से ही स्वामीजी आध्यात्मिक जगत में सिद्ध थे। ईश्वर के ध्यान में बड़ी गहराई से डूब जाते थे। उनके मन में इस बात का आभास हो चुका था कि ईश्वर का ध्यान उनका अधिकार है और यह एक शाश्वत अधिकार है। व्यक्ति जब एक बार ब्रह्म चिंतन में डूब जाता है तो वह उसमें लीन ही रहना चाहता है उससे उबरना नहीं चाहता। क्योंकि व्यक्ति जब ध्यानस्थ होता है तब उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है और इस आनंद की तुलना किसी से नहीं की जा सकती है।

स्वामी विवेकानंद की आध्यात्मिकता और साधना पक्ष पर बात करते हुए यह कहा जा सकता है कि उनके जीवन में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के निर्माण में उनकी माँ भुवनेश्वरी देवी द्वारा उनके बाल्य काल में उन्हें सुनाई गई पौराणिक कहानियों की भी बहुत बड़ी भूमिका रही है। क्योंकि तोड़ो कारा उपन्यास के प्रथम खंड 'निर्माण में लेखक नरेंद्र कोहली ने यह बताया है कि विवेकानंद की माता ने उन्हें एक बार विष्णु भक्त प्रल्लहाद की कथा भी सुनाई थी जो हिरण्यकशिपु का आत्मज था।इस कहानी को सुनकर बालक नरेंद्र के मन में जो विचार उभरा उसके बारे में लेखक लिखते हैं कि "तो फिर सांसारिक सफलताएँ तो निस्सार हुई न माँ ? नरेंद्र ने प्रश्न किया। माँ ने अपने पुत्र की बात सुनकर जो कहा उसके विषय में लेखक लिखते हैं कि "हाँ मेरे लाल ! भुवनेश्वरी ने पुत्र को प्रशंसा-भरी दृष्टि से देखा, तूने तो कथा का सार ही ग्रहण कर लिया"।[5].. अर्थात् मनुष्य को ईश्वर से आध्यात्मिक सुखों की याचना करनी चाहिए भौतिक सुखों की नहीं क्योंकि भौतिक सुख नश्वर है और उसमें वास्तविकता नहीं है। मानव जीवन का सम्पूर्ण सार आध्यात्मिकता में ही है इस बात

का बोध बालक नरेंद्र को हो चुका था। यहीं उपन्यासकार नरेंद्र कोहली ने दर्शाने का प्रयास किया है।

स्वामी विवेकानंद एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें शायद श्री रामकृष्णपरमहंस से मिलने से पूर्व ही अपने जीवन के मूल लक्ष्य का कहीं न कहीं कुछ न कुछ आभास हो ही चुका था तभी वे रामचंद्र दत्त से एक बार यह भी कहते हैं कि "इसलिए जन्म नहीं लिया है कि विवाह करके बच्चे पैदा करूँ, कुछ बड़ा काम करने के लिए इस संसार में आया हूँ"।[6]..

स्वामीजी की दृष्टि से धर्म और ईश्वर का अर्थ होता है उसका प्रत्यक्षीकरण। स्वयं लेखक नरेंद्र कोहली कहते हैं कि 'जो प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता उसे वे सत्य नहीं मानते'। जब रामचंद्र दत्त स्वामीजी से कहते हैं कि जो विवाहित होते हैं और जिनके घर में बच्चों का जन्म होता है या जिनका अपना परिवार होता है उन्हें भी धर्म की प्राप्ति होती है और इतना ही नहीं वे भी भगवान को प्राप्त करने की अभिलाषा लेकर मंदिर में जाते हैं और ईश्वर की अनुकम्पा या कृपा प्राप्त करते हैं उन्हें भी पुण्य की प्राप्ति होती है। तब स्वामीजी ने जो कुछ रामचंद्र दत्त से कहा उसे लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "वे मंदिर जाकर प्रसाद पाते हैं, ईश्वर नहीं। मैं ईश्वर को पाना चाहता हूँ-- साक्षात। बातें करना चाहता हूँ। मैं उसे वैसे ही पाना चाहता हूँ, जैसे पौराणिक कथाओं में साधकों ने उसे पाया है"।[7]..

स्वामी विवेकानंद की आध्यात्मिकता और साधनात्मकता पर बात करते हुए यह कहा जा सकता है कि बचपन से ही उनके मन में सन्यास जीवन के प्रति जो आकर्षण है इसकी भी भूमिका रही है। वे अपने मित्र गोपु के साथ सन्यासियों के विषय में भी वार्तालाप करते हुए दिखाई देते हैं। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "मुझे सन्यास बेहद आकर्षित करता है। मेरी आत्मा को जितना सुख और संतोष सन्यास की बात सोचकर मिलता है, उतना और किसी से नहीं मिलता"।[8]..

उपन्यासकार ने स्वामी विवेकानंद की आध्यात्मिकता और साधनात्मकता को दो भागों में बाँटने का प्रयास किया है। जो इस प्रकार है

(i) श्री रामकृष्णपरमहंस से मिलने से पूर्व की आध्यात्मिकता

(ii) श्री रामकृष्णपरमहंस से मिलने के बाद की आध्यात्मिकता

अपने दीक्षा गुरु श्री रामकृष्ण से दीक्षा लेने और उनसे परिचित होने से पूर्व के आध्यात्मिक जीवन पर बात करते हुए एक बात यहाँ उल्लेख करना ज़रूरी है। यह घटना उस समय की है जब स्वामीजी के जीवन में ईश्वर से सम्बंधित दो सवाल सदैव जाग उठते थे कि लोगों ने क्या ईश्वर को देखा है ? क्या वे उन पर विश्वास करते हैं ? अपनी इसी जिज्ञासा को लेकर वे कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर के पास पहुँचे थे। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "नरेंद्र के मन में जैसे महर्षि के प्रति स्पर्धा का भाव जागा। वह क्यों इधर-उधर भटकता फिर रहा है ? वह इस प्रकार किसी एकांत में जाकर क्यों नहीं बैठता ? पर उसे एकांत नहीं ईश्वर चाहिए। महर्षि ने एकांत को पाया है, पर क्या उन्होंने ईश्वर को पाया है"।[9]..

देवेंद्रनाथ ठाकुर की अंतर्दृष्टि खुल चुकी थी और उन्होंने स्वामीजी के भीतर विकसित हो रही आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की पहचान कर ली थी। परिणामस्वरूप उनसे जब स्वामी विवेकानंद ने पूछा कि उन्होंने ईश्वर को देखा है या नहीं तो उन्होंने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया लेखक नरेंद्र कोहली ने देवेंद्रनाथ ठाकुर के विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है यथा "तुम्हारे नेत्र योगी के नेत्र हैं। तुम ध्यान करो"। महर्षि पुनः बोले, "मैं तुम्हारे अंदर एक महान योगी का भविष्य देख रहा हूँ"।[10]..

आलोच्य पंक्तियों में महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर के द्वारा स्वामी की क्षमताओं को जानकर सीधा उत्तर न देकर स्वामीजी को आध्यात्मिक मार्ग में बढ़ने की प्रेरणा ही दी गई है क्योंकि तभी वास्तविकता का ज्ञान नरेंद्र (विवेकानंद) जैसे व्यक्ति को प्राप्त हो सकता है। कालांतर में इसका आभास भी स्वामीजी को हुआ था। एक ज़माना ऐसा भी था जब स्वामी विवेकानंद के जीवन में ब्राह्म समाज का प्रभाव था और वे उस समय के बड़े बड़े ब्राह्म नेताओं जैसे प्रताप चंद्र मजुमदार, केशव चंद्र सेन आदि के प्रभाव में आ चुके थे इनके प्रभाव

के फलस्वरूप उनके मन में भले ही मूर्ति पूजा के प्रति अविश्वास जागा था। परंतु सर्व व्यापक ईश्वर की शक्ति या अस्तित्व के प्रति उनके मन में आस्था जाग उठी थी।

जिस समय वे ब्राह्म समाज से जुड़े थे और ब्राह्म परिमण्डल के बीच भ्रमण किया करते थे तब भी बचपन की भाँति ही उनके मन में ईश्वर के प्रति ध्यान की रुचि लगी हुई थी हालाँकि यह अलग बात है कि ब्राह्म समाज के प्रभाव के फलस्वरूप वे किसी भी प्रकार की मूर्ति या प्रतीक का प्रयोग नहीं करते थे। यहाँ भी यह बताया जा सकता है कि ब्राह्म समाज से जुड़ने के बाद भी उनके मन में जो ईश्वर के ध्यान की प्रवृत्ति थी चाहे वह निर्गुण ब्रह्म का ही ध्यान क्यों न हो, यह उनकी आध्यात्मिकता और साधनात्मकता का ही प्रतीक था। ध्यान बालक नरेंद्र के लिए एक स्वतंत्र प्रक्रिया थी। लेखक के अनुसार "नरेंद्र को भी ध्यान करने के लिए किसी संगठन अथवा उसके नियमों की आवश्यकता नहीं थी। वह उसका निजी कर्म था। उस समय तो वह पूर्ण एकांत चाहता था।उसे तो वन का सा एकांत चाहिए था, जहाँ केवल वह और उसका चिंत्य भगवान। कोई व्यक्ति, कोई घटना, कोई चर्चा न हो, जिससे उसका ध्यान बँटे। ध्यान के लिए और चाहिए ही क्या था। वह आँखें बंद करता था और उसका मन कहीं लीन होने लगता था"।[11].. अपनी आध्यात्मिक और साधनात्मक प्रवृत्ति के कारण ही उनके मन में एक ऐसा क्षण भी आता है जब मन में संसार के प्रति वैराग्य की भावना जाग उठती है और एक सन्यासी का चित्र उनके समक्ष उभर उठता है। जो सदैव अपने मानस को ईश्वर की भक्ति में लीन रखता था। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "किंतु अगले ही क्षण संसार से विमुख होकर उसके मन में एक सन्यासी का चित्र उभरता था। ..."।[12]..अर्थात् वे जिस भावी सन्यासी जीवन की ओर वे पदार्पण करने वाले थे इसका दर्शन उन्हें हो चुका था। धन-सम्पत्ति जो सांसारिक वस्तुएँ हैं इनका एक साधक के जीवन में कोई महत्व नहीं है। अगर अंतरात्मा स्वच्छ है तो संसार का कोई भी मनुष्य यह जान सकता है कि उसकी वास्तविक आवश्यकताएँ क्या हो सकती हैं ? व्यक्ति अगर भगवान की साधना में रत रहता है तो उसकी अंतर्दृष्टि खुल जाती है और अपने भविष्य का साक्षात दर्शन होता है।

स्वामीजी का रूप बड़ा ही सुदर्शन था। परिणाम स्वरूप बात जहाँ आकर्षण की आती है जिस ओर संसार आकर्षित होता है, इसका अभिप्राय यह है कि वे कामिनी की ओर आकृष्ट नहीं हुए बल्कि ईश्वर की ओर ही आकृष्ट हुए। यह उनकी साधनात्मक प्रवृत्ति के कारण ही सम्भव हो सका है। यह उनकी आध्यात्मिकता और साधनात्मक प्रवृत्ति का ही परिणाम था कि जीवन में पहली बार कुसुमलता नामक एक किशोरी के मन में जो कि एक बाल विधवा थी उनके प्रति जो आकर्षण था उससे स्वयं को मुक्त कर पाए। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "नरेंद्र के कमरे का द्वार उन्मुक्त खुला था। कमरे में अभी प्रकाश भी था। वह कोई पुस्तक लिए भूमि पर चटाई बिछाए हुए बैठा था। कितनी कलात्मक मुद्रा थी प्रिया के प्रतीक्षा की ? कुसुम द्वार के ठीक बीचोंबीच आकर खड़ी हो गई। उसकी इच्छा हुई कि कहे साधक ! तेरी साधना पूरी हुई। उठ देख साक्षात रति तुझे वरदान देने के लिए उपस्थित हुई है। नरेंद्र का ध्यान उचटा। उसने दृष्टि उठाकर देखा : बीच द्वार एक किशोरी खड़ी थी। वह उसे नहीं जानता था, किंतु वह अकेली उसके कमरे के द्वार पर खड़ी थी। रात का समय था। सब ओर एकांत था। किशोरी विशेष प्रयत्न से प्रसाधन करके आई थी। नरेंद्र उठने के प्रयत्न में घुटने के बल बैठ गया। उसके हाथ जुड़ गए, बोलो माँ ! मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ"।[13].. आगे लेखक लिखते है कि "कुसुमलता के पग ठिठक गए : माँ ! वह उसे माँ कह कर सम्बोधित कर रहा था। कैसा सात्विक भाव था उसके मुख पर।कुसुमलता पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। उसे लगा जैसे भरे हाट में वह अपनी किसी भूल के कारण कोई भयंकर निर्लज्जता का कार्य कर बैठी है। बोलो माँ ! नरेंद्र ने पुनः कहा, मैं अपनी माँ के समान ही तुम्हारी सेवा करूँगा। आदेश दो। अपने पुत्र को आदेश देने में संकोच कैसा ? कुसुमलता ने देखा अभी थोड़ी देर पहले तक उसके मन में जो मनोज कुसुमों के आयुध लिए वीर वेश में खड़ा था, जिसने पुष्प संभार कर रखा था और जो विश्व-विजयी मुस्कान से सुशोभित था, जिसके मुख पर मधु और आँखों में मद था, उसे नरेंद्र की एक दृष्टि ने सर्वथा अशोभनीय, कलुषित तथा पापिषठ बना डला था। नरेंद्र की दृष्टि जैसे त्रिनेत्र की दृष्टि थी, जिसके खुलते ही काम-दहन हो गया था। कामदेव की दिव्य आभा मलिन ही नहीं हो गई थी उसे अपने आपसे घृणा भी होने लगी थी"।[14]..

आगे लेखक और भी लिखते हैं कि "कुसुमलता उलटे पाँव लौट पड़ी। उसे अपना सारा शरीर सर्वथा अपवित्र लग रहा था और मन तो पाप की खान ही था। उसने डाली भी तो किस पवित्र आत्मा पर पाप दृष्टि डाली !वह उर्वशी बन कर उसे रिझाने चली थी तो कम से कम यह तो देख लेती कि वह कोई अर्जुन तो नहीं है"।[15]..

इस प्रकार आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बचपन से प्राप्त अपनी गहन उच्च स्तरीय साधनात्मक प्रवृत्ति के कारण ही वे इस भयानक परिस्थिति में स्वयं की रक्षा कर पाए थे और जो कामिनी शक्ति उन्हें अपने जाल में फ़साने हेतु आई थी उसने अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाना और वह मातृ- शक्ति में परिणत होकर चली गई। केवल एक बार नहीं बल्कि अनेकों बार उनके जीवन में इस प्रकार की परिस्थियों का आगमन होता है और वे बच निकलते हैं। आगे चलकर जब वे अमेरिका के शिकागो में विश्व धर्म सम्मेलन के लिए गए हुए थे और श्रीमती लेयन नामक एक अमरीकी महिला के घर में रहते थे उसने एक दिन कहा कि "Swami I am very much afraid."

तब स्वामीजी ने कहा कि "what is the matter ? O ! American mother of mine."

उस महिला का कहना था कि "ये सुंदरी युवतियाँ जिस प्रकार से तेरे पीछे पड़ी हैं ये तेरा सारा योग और ब्रह्मचर्य खा जाएँगी। तो स्वामीजी ने कहा था "माँ यह सत्य है कि मैं सड़क के किनारे सोता हूँ और किसी ग़रीब का दिया हुआ भात का कटोरा खाता हूँ।राजाओं के महलों में सोता हूँ तो सुंदरी दासियाँ मयूर पंख से हवा करती हैं, फिर भी मेरे मन में काम नहीं जागता"। आगे श्रीमती लेयन का कहना था कि "तेरे मन में नहीं जागता है तो क्या हुआ ? इनके मन में तो जागता है ये छोड़ देंगी क्या" ? तब स्वामीजी ने श्रीमती लेयन से जो बात कहीं थी वह इस प्रकार है कि "माँ नारी का मेरे लिए केवल एक ही रूप है वह है माँ का रूप"। यहाँ उन्होंने जिस मातृ रूप की बात अमेरिका के श्रीमती लेयन से कहीं थी उसकी पहली पृष्ठभूमि का निर्माण कहीं न कहीं उस समय हो चुका था जब वे अपनी पढ़ाई के लिए एक घर में किराए पर रहा करते थे वहीं पर उन्हें पास के मकान में रहने वाली कुसुमलता नामक एक किशोरी से साक्षात्कार होता है और उनके प्रति उसके मन के आकर्षण को देखकर उनके मन में मातृ रूप की जागृति होती है और उस किशोरी की काम दृष्टि

पराजित हो जाती है। यह उस समय की बात है जब अपने भावी गुरु और आध्यात्मिक जीवन के मार्ग दर्शक श्री रामकृष्ण परमहंस से अभी उनका परिचय भी नहीं हुआ था। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि रामकृष्ण परमहंस से मिलने से पूर्व ही उनके जीवन में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था।

स्वामी विवेकानंद की साधनात्मकता और आध्यात्मिकता पर बात करते हुए बचपन में जिस प्रकार से वे ईश्वर के ध्यान में लीन रहा करते थे, ठीक उसी प्रकाए अपनी युवा अवस्था में भी वे भगवान के ध्यान में लीन रहा करते थे। उदाहरण के लिए एक बार जब वे अपने पारिवारिक कारणों के चलते अपनी पढ़ाई के लिए अपने नानिहाल में थे तब भी वे कई घंटे ईश्वर के ध्यान में लीन रहते थे। यह स्वामीजी के प्रति भगवान की कृपा ही थी कि वहाँ एक तपस्वी का जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसे भी उनकी आध्यात्मिकता और साधनात्मक पृष्ठभूमि के तौर पर देखा जा सकता है।

लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "नानी के घर में वह निर्विघ्न लम्बे समय तक ध्यान कर सकता था। ध्यान के लिए यहाँ रात हो जाने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं थी।वह एक प्रकार से प्रकटत:तपस्वी जीवन व्यतीत कर सकता था। अध्यन से जो भी समय बचता, उसमें वह ध्यान करने लगा था। महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि उसकी आँखें एक योगी की आँखें थीं। वह साधना करे तो सिद्ध योगी हो सकता था। रात के निर्विघ्न सन्नाटे में तो कई-कई घंटे वह ध्यान मुद्रा में ही बैठा रहता था"।[16]..

यानी कि परम ब्रह्म एक वास्तविक यथार्थ है।

यहाँ स्वामीजी की साधनात्मकता और आध्यात्मिकता पर बात करते हुए नरेंद्र कोहली ने यह दर्शाया है कि उनके मन में अपनी मोह, माया, लोभ, अहंकार आदि मानसिक प्रवृत्तियों को विध्वंस करने की परिकल्पना अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस से परिचित होने से पूर्व ही बन चुकी थी। वे किसी व्यक्ति की तलाश में थे जो मन से इन प्रवृत्तियों का विनाश कर सकता था। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "नरेंद्र निष्कंप स्वर में बोला कबीर ने कहा है न –

अब घर जारौं तासुका, जो चलै हमारे साथ"।।[17]..

तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के निर्माण शीर्षक खंड में ही यह देखा जा सकता है कि परमब्रह्म की प्राप्ति के लिए वे कठिन से कठिन परिस्थितियों का अतिक्रमण करने के लिए तैयार थे।

प्रेसीडेंसी कॉलेज में पढ़ते हुए अंग्रेज़ी के स्वच्छन्दतावादी कवि विलियम वोर्डसवोर्थ की प्रख्यात कविता एक्सकार्शन पढ़ाते समय कॉलेज के प्राचार्य प्रो विलियम हैस्टी ने बताया कि "जब हम कहते हैं कि वोर्डसवोर्थ प्रकृति के कवि हैं तो सामान्य पाठक इतना ही समझ पाता है कि शायद प्रकृति उनकी कविताओं का विषय है।वे प्रकृति के विषय में ही लिखा करते थे। यह ठीक है कि उनका विषय प्रकृति था, किंतु यहीं उनका पूर्ण सत्य नहीं है"।[18]..

स्वामीजी को द्वैतवाद और अद्वैतवाद की जानकारी कहीं न कहीं हैस्टी के व्याख्यान से ही मिलती है। स्वामी विवेकानंद को पहली बार ट्रांस या भाव समाधि की जानकारी भी प्रो० हैस्टी के द्वारा विलियम वोर्डसवोर्थ की कविता पढ़ाते हुए ही मिला था। साथ ही साथ उन्हें इस बात की भी जानकारी मिलती है कि भाव समाधि तक वहीं व्यक्ति पहुँच सकता है जिसके मन में सात्विक प्रवृत्तियों का वास होता है। यह उनकी आध्यात्मिकता और साधनात्मकता का ही परिणाम है कि उनका मन कविता से भी अधिक ट्रांस या भाव समाधि की ओर ही आकृष्ट होता चला जा रहा था।

लेखक नरेंद्र कोहली स्वामी विवेकानंद के रामकृष्ण परमहंस से परिचित होने से पूर्व प्रो० हैस्टी की बातों को सुनकर भाव समाधि के प्रति उनके मन में उदित आकर्षण के बारे में लिखते हैं कि "नरेंद्र का मन एक विचित्र सी व्याकुलता का अनुभव कर रहा था। उसकी रुचि वोर्डसवोर्थ में कम, 'ट्रांस' में अधिक थी"।[19]..

स्वामी विवेकानंद के भावी गुरु और मार्ग दर्शक श्री रामकृष्ण परमहंस का प्रथम परिचय भी प्रो० हैस्टी के माध्यम से ही मिलता है, जहाँ वे कहते हैं कि इस प्रकार की भाव समाधि में पहुँचे हुए केवल एक ही संत को वे जानते हैं जो दक्षिणेश्वर नामक स्थान पर रहते हैं और उनका नाम श्री रामकृष्ण परमहंस है।

एक समय नरेंद्र के जीवन में ऐसा दौर आता है जब नरेंद्र के पिता विश्वनाथ दत्त उन्हें बैरिस्टर बनाना चाहते हैं। जब इस विषय पर पिता और पुत्र के बीच वार्तालाप होती है तो पुत्र कहता है कि वह दिव्य जीवन की तैयारी कर रहा है। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "दिव्य जीवन की बाबा ! नरेंद्र हँसा, ये छोटे-छोटे व्यवसाय मुझे आकृष्ट नहीं करते। मैं तो एक असाधारण व्यवसाय की खोज में हूँ, जो जीवन को अपवित्र न करें जीवन की अपवित्रता हरण करे"।[20]..इन पंक्तियों में यही कहा गया स्वामीजी इस संसार में ईश्वरीय जीवन व्यतीत करने के लिए आए थे। इसका कुछ न कुछ आभास उन्हें भी हो चुका था। तभी तो उन्होंने अपने पिता से कहा था कि वे दिव्य जीवन की तलाश में हैं।

इस उपन्यास में लेखक नरेंद्र कोहली ने दिखाया है कि किस प्रकार रामकृष्ण से भेंट होने के बाद उनके भीतर की आध्यात्मिक और साधनात्मक गुणों का विकास हुआ। पहली ही भेंट में जब रामकृष्ण ने उन्हें स्नेहपूर्वक अपने हाथों से मिठाई खिलाई तो उन्हें कुछ देर के लिए ऐसा आभास हुआ कि जैसे वे राम हों और ठाकुर श्री रामकृष्ण जैसे शबरी हो और वह अपने स्नेह के कारण झूठे बेर खिला रही हो। कितना अपूर्व प्रेम है। स्वामीजी के मन में इस प्रकार के चिंतन का समागम होना यहीं दर्शाता है कि अपने गुरु के प्रथम दर्शन में ही उनके मन ने अचानक उनके वास्तविक स्वरुप का पहचान करा दिया था। भले ही कुछ समय के लिए उन्हें इसका आभास अज्ञात रूप से हुआ था। इस छोटी सी घटना को गुरु के सानिध्य में साधनात्मक विकास के प्रथम सोपान के रूप देखा जा सकता है। स्वयं लेखक के शब्दों में कहें तो इस प्रकार कहा जा सकता है कि "शबरी अपने स्नेह के आवेग में अपने झूठे बेर भगवान राम को खिला रही हो"।[21]..स्वामीजी की आध्यात्मिकता और साधनात्मक प्रवृत्ति के परिणाम स्वरुप उनके गुरु ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंस ने पहले ही दर्शन में उन्हें पहचान लिया था कि यह लड़का अपने जन्म से ही ध्यान सिद्ध है।

तभी तो वे कहते हैं कि "मैं जानता हूँ प्रभु !आप पुरातन ऋषि – नर रूपी नारायण हैं। जीवों की दुर्गति से उद्धर करने के लिए आपने पुनः संसार में अवतार लिया है"। भले ही स्वामीजी शुरू में उनके इन बातों को पहचान नहीं पाए थे।[22].. जब स्वामीजी पहली बार सुरेंद्रनाथ मित्र और अपने रिश्तेदार रामचंद्र दत्त के साथ दक्षिणेश्वर गए और ठाकुर से

पहली बार भेंट की तब कहीं न कहीं उनके मन में ठाकुर के प्रति एक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हो चुका था क्योंकि एक बार उनके मन में यह विचार भी जाग उठा था कि क्या यह व्यक्ति उनका गुरु बन सकता है ?

एक बार रामकृष्ण परमहंस के दर्शन के बाद विवेकानंद के मन में उनके साथ दुबारा मिलने की अभिलाषा जाग उठी थी और साथ ही साथ यह भी कहना चाहिए कि रामकृष्ण के प्रति उनके मन में एक आकर्षण भी कहीं न कहीं उत्पन्न हो गया था। लेखक के शब्दों में "अपनी व्याकुलता में नरेंद्र उठकर खड़ा हो गया। उसका मस्तिष्क परस्पर विरोधी तर्कों की टकराहट से जैसे दर्द करने लगा था... उसकी इच्छा हुई कि वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाकर कहे – मेरे प्रश्नों के उत्तर विद्वान लोग नहीं दे रहे हैं। पुस्तकें मौन हैं। तर्क तो मेरे पास है, किंतु ज्ञान का प्रकाश नहीं है"।[23]..

पहली भेंट के उपरांत उनके मन में उस साधक से फिर मिलने की अभिलाषा जाग उठी थी। उनका मन ब्रह्मज्ञान के सागर में डूबना चाहता था। वे ईश्वर का साक्षात दर्शन करना चाहते थे, उनसे वार्तालाप करना चाहते थे, वे ईश्वर को उसी प्रकार पाना चाहते थे जिस प्रकार से वेदों और पुराणों में ईश्वर के दर्शन का वर्णन है। वे उसी प्रकार ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते थे जिस प्रकार से पुराणों में ऋषियों ने ईश्वर दर्शन किया है और उनसे बातें की हैं। उनके मानस में अनेक दिनों से जो प्रश्न गुंज रहा था कि क्या किसी ने ईश्वर को देखा है ? उनके इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर किसी ने नहीं दिया था। यहाँ तक कि बहुत बड़ी-बड़ी ज्ञानवर्धक पुस्तकें भी उनके मन की जिज्ञासा का समाधान नहीं कर पायी थी। लेकिन जब वे रामकृष्ण परमहंस के निकट पहुँचे थे तब रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें देखते ही कहा था कि 'तुम लोगों को जैसे देख रहा हूँ और बातचीत कर रहा हूँ, वैसे ही ईश्वर को भी देखा जा सकता है और उनसे बात की जा सकती है'। नरेंद्र की जिज्ञासा का वैसा उत्तर और किसी भी व्यक्ति ने नहीं दिया था।उनकी इस बात को सुनकर युवक नरेंद्र के मन में इस विचार का आना कि क्या ये संत मुझे ईश्वर का दर्शन करवा सकते हैं ?

गुरु और शिष्य दोनों ही एक-दूसरे से अपनी प्रथम मुलाकात के उपरांत मिलने के लिए आतुर थे। जिस प्रकार से नरेंद्र जिनके लिए स्वामी विवेकानंद बनने की पृष्ठभूमि का निर्माण होने वाली है परमहंसजी से मिलने के लिए आतुर थे ठीक उसी प्रकार रामकृष्णदेव भी अपने भावी उत्तराधिकारी से मिलने के लिए अत्यंत ही बेचैन थे। पहली ही भेंट में अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से अपने भावी उत्तराधिकारी की पहचान श्री रामकृष्ण ने कर लिया था। यहीं कारण है नरेंद्र को देखने के लिए बार-बार उनका मन व्याकुल होता था और नरेंद्र की अनुपस्थिति में उनके मन में तीव्र वेदना होती थी। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "ठाकुर का मन उदास था। एक विचित्र प्रकार की व्याकुलता ने उन्हें घेर लिया था। थोड़ी देर तक वे अपनी चौकी पर बैठे रहे और फिर उठकर टहलने लगे। रामलाल ने उन्हें इस प्रकार व्याकुल देखा तो पुछा, क्या बात है ठाकुर ? ठाकुर ने उसे इस दृष्टि से देखा जैसे कह रहे हो, क्यों परेशाल करता है, और फिर बोले हृदय में वेदना हो रही है रे"! रामलाल के पुछने पर वे बताते हैं कि "ऐसी वेदना जैसे कोई अंगोछा निचोड़ने के समान मेरे कलेजे को ज़ोर से निचोड़ रहा हैं"।[24]..

रामकृष्ण परमहंस से मिलने के बाद उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति का विकास हुआ क्योंकि पहली बार जब दोनों का साक्षात्कार हुआ था और इसी व्याकुलता के कारण दोनों के बीच दूसरी बार मिलने की एक प्रबल अभिलाषा जाग उठी थी। इसी उत्कंठा के कारण इन दो आध्यात्मिक पुरुषों का दूसरी बार मिलन हुआ और इस दूसरे मिलन में युवक नरेंद्र को जो भावी काल के स्वामी विवेकानंद बनने वाले थे इसकी पृष्ठभूमि निर्माण का शंखनाद हो चुका था। क्योंकि तब उन्हें रामकृष्ण के सानिध्य से स्वामीजी को भगवत दर्शन की अनुभूति हुई। ठाकुर के स्पर्श के माध्यम से उनकी अंतरात्मा यह तो जान ही चुकी थी कि वे सांसारिक जीवन बिताने हेतु नहीं आए थे बल्कि सन्यास जीवन धारण करते हुए ईश्वर को प्राप्त करने के लिए आए थे,परंतु उस जीवन की प्राप्ति के लिए उपयुक्त समय का आगमन नहीं हुआ था। यह तो गुरु के सानिध्य में आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भिक दौर था। अभी तो बहुत कुछ शेष था। अतः ठाकुर के स्पर्श मात्र से जब वह अलौकिक संसार में, भगवत

आनंद के राज्य में प्रवेश कर चुका था तो वह ठाकुर से कहता है कि "यह क्या कर रहे हैं आप ? घर में मेरे माँ -बाप हैं"।[25]..

युवक नरेंद्र जब ठाकुर के स्पर्श से मुक्त होता है तब उसे पता ही नहीं चलता कि उसे यह सब क्या हो गया था। ठाकुर ने भी इस बात को स्वीकार किया कि धीरे-धीरे आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया समय आने पर ही पूर्ण होगी।तीसरी बार जब वे दक्षिणेश्वर गए तो ठाकुर के स्पर्श से अचेत होकर ठाकुर की इच्छा के लोक में गए और ठाकुर को उन्होंने अपना वास्तविक परिचय दिया। इसे उनकी साधनात्मक विकास और आध्यात्मिक विकास का परिणाम कहा जा सकता है कि शुरू में वे अद्वैतवाद को नहीं मानते थे लेकिन ठाकुर रामकृष्ण से परिचित होने के बाद उनकी कृपा के फलस्वरूप उन्होंने अद्वैतवाद को स्वीकार किया। अपनी साधना के द्वारा ही उनके मन में अपने गुरु की एक वास्तविक समझ बनी थी। गुरु के निकट साधनात्मक जीवन बिताते हुए स्वामीजी को यह समझ में आता है कि व्यक्ति को जब ईश्वर की साधना करते हुए धीरे-धीरे उच्च स्तर की प्राप्ति होती है तो वह शांत हो जाता है उसकी वाणी स्तब्ध हो जाती है। उस परम सत्य का वर्णन मानव की भाषा के माध्यम से नहीं किया जा सकता है। इसे केवल साधना के माध्यम से जाना जा सकता है। ठाकुर अपनी समाधि की समाप्ति के बाद नरेंद्र को समझाते हुए कहते हैं लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "ठाकुर की समाधि भंग हो गई। उनकी चेतना लौटी। वे प्रकृतिस्थ लग रहे थे और अपने शिष्यों से चर्चा करने की मुद्रा में आ गए थे। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकरण। वे बोले महाकरण में जाने के कारण चुप हैं वहाँ बातचीत नहीं की जा सकती"।[26]..

आलोच्य पंक्तियों में महाकरण परमब्रह्म को ही कहा गया है। जब उनका दर्शन हो जाता है तो और कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। अपने शिष्यों से विशेष रूप से नरेंद्र से इस कारण ठाकुर ने यह सब चर्चा की थी क्योंकि वह तो बचपन से ही ध्यान सिद्ध था और ईश्वर दर्शन के लिए आया था। गुरु के निकट बैठकर साधना करते हुए युवक नरेंद्र ने अपने स्वरूप और गुरु के वास्तविक स्वरूप की पहचान की।गुरु के निकट बैठकर साधना करते हुए ही उन्होंने यह समझा था कि मनुष्य का शरीर ही तीर्थ है।इसी तीर्थ में भगवान

नित्य निवास करते हैं क्योंकि साधना काल में ठाकुर रामकृष्ण नरेंद्र को सात मंज़िला एक मकान के बारे में बताते हैं जो और कुछ नहीं बल्कि मानव देह में स्थित सात चक्र हैं और नरेंद्र वह भाग्यशाली व्यक्ति है जो इन सातों चक्रों को भेद सकता है। ठाकुर श्री रामकृष्ण की मान्यता थी कि जो राजा का बेटा है वहीं इन सात चक्रों को भेद सकता है। यहाँ राजा का बेटा अपनी साधना के क्षेत्र में उच्च स्तर पर पहुँचे हुए साधकों का प्रतीक है। लेखक लिखते हैं कि "सात मंज़िला मकान है। किसी की पहुँच बाहर के फाटक तक होती है, किसी की भीतरी फाटक तक। जो राजा का लड़का है उसका तो वह अपना ही मकान है। वह सातों मंज़िलों पर घूम-फिर सकता है"।[27].. आलोच्य पंक्तियों के द्वारा ठाकुर उदाहरण तो अपना दे रहे हैं, अपनी उपलब्धियों की ओर ही संकेत कर रहे हैं लेकिन वे अपने उदाहरण से नरेंद्र को ही उसके वास्तविक स्वरूप की पहचान दिला रहे हैं क्योंकि वे अपनी योग दृष्टि के माध्यम से यह जान चुके थे कि नरेंद्र सिद्ध पुरुष है। ठाकुर के पास बैठकर नरेंद्र ने यह जाना कि मन की शुद्धता को शास्त्रों में बड़ा महत्व दिया गया है। नरेंद्र का आधार पवित्र था। उसे किसी भी प्रकार की अपवित्र भावना कभी भी स्पर्श ही नहीं कर सकती है क्योंकि ठाकुर को इस बात का बोध नरेंद्र के साथ उसके प्रथम साक्षात्कार से ही हो चुका था कि वह ध्यान सिद्ध है। वह नित्य सिद्ध शुद्ध आत्मा है। लेखक के अनुसार "ठाकुर बिना रुके ही कहते चले गए, एक हैं नित्य सिद्ध की तरह। वे जन्म से ही ईश्वर की आकांक्षा करते हैं। संसार की कोई चीज़ उन्हें अच्छी नहीं लगती।वे होमा पक्षी होते है। अवतारों के संग आने वाले नित्य सिद्ध होते हैं, या फिर अंतिम जन्म वाले प्राणी ..."।[28].. नरेंद्र के इस वास्तविक व्यक्तित्व से परिचित होने के कारण ही ठाकुर ने कहा था कि "गाय शूकर खाकर भी अगर किसी का ईश्वर की ओर झुकाव हो तो वह धन्य है, और निरामिष खाकर भी अगर किसी का मन कामिनी और कंचन पर लगा रहे तो उसे धिक्कर है"।[29]..

साधना काल में नरेंद्र ने गुरु के पास रहते हुए एक खेल के माध्यम से संसार में आवागमन के चक्र से सदा के लिए मुक्त होने का ज्ञान प्राप्त किया था।नरेंद्र ने यह देखा था कि अगर व्यक्ति का मन शुद्ध है और ईश्वर की कृपा बनती है तो कोई भी व्यक्ति अपनी एक जन्म की साधना के माध्यम से ही भव बंधन से मुक्त हो सकता है। लाटू और हाजरा के

बीच एक खेल का आयोजन किया गया था। इस खेल का आयोजन ठाकुर के निर्देश पर ही हुआ था। नरेंद्र सहित अपने अन्य शिष्यों को संसार रूपी सागर के बंधन से मुक्त होने हेतु शिक्षा देने के लिए ही इस खेल का आयोजन किया गया था।ठाकुर स्वयं खड़े होकर इस खेल को देख रहे थे। लाटू की गोटियाँ संसार वाले कोठे में थीं। वे एक ही बार में लाल हों गईं और लाटू आनंदित हो उठा। इसे देखकर ठाकुर को बहुत ही आनंद की अनुभूति हुई और उनका कहना था कि "ईश्वर की इच्छा ऐसी भी होती है कि सच्चे आदमी की हार नहीं होती। लाटू को कितना आनंद है देखो तो ज़रा। उसकी गोटी यदि लाल न होती, तो उसे कितना दुःख होता।"[30]..

ठाकुर रामकृष्ण के पास रहते हुए और साधनात्मक जीवन बिताते हुए ही नरेंद्र ने यह जाना कि ईश्वर तक पहुँचने अनेकों मार्ग है उसे यह भी ज्ञात हुआ कि ठाकुर रामकृष्ण के दर्शन के अनुसार मातृ भाव ही बड़ा शुद्ध भाव है और उनकी भक्ति उसी भाव की है।नरेंद्र को यह भी ज्ञात होता है कि द्वैतवाद एवं अद्वैतवाद में अंतर नहीं है। यह तो भक्त का दृष्टिकोण है। गुरु ने उनसे और महेंद्र गुप्त से कहा था कि "अब मैंने यहीं समझा है कि मैं पूर्ण हूँ और मैं उनका अंश हूँ। वे प्रभु हैं और मैं उनका दास हूँ। कभी यह भी सोचता हूँ कि वे ही मैं हैं और मैं ही वह हूँ"।[31].. अर्थात् भक्ति का यह रूप भिन्न-भिन्न साधकों के निकट विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। इसी कारण भक्ति के पाँच रसों की बात की गई है जो इस प्रकार हैं शांत, दास्य, वात्सल्य और सख्य तथा मधुर। वस्तुतः ये पाँचों रस एक ही हैं इनमें कोई भिन्नता नहीं है।

ठाकुर श्री रामकृष्ण के निकट बैठकर साधना करते हुए युवक नरेंद्र यह भी जान पाता है कि जो सच्चे साधक होते हैं और उच्च स्तरीय साधक होते हैं संसार की निम्न से निम्न परिवेश भी उनके चरित्र या आचरण को भ्रष्ट नहीं बना सकती क्योंकि वे ईश्वर कोटि के जीव होते हैं। कोहलीजी लिखते हैं कि "नरेंद्र समझ रहा था कि ईश्वर-कोटि के माध्यम से ठाकुर अपनी ही स्थिति समझा रहे थे। वे अपनी इच्छा अनुसार सृष्टि और स्रष्टा के मध्य कहीं भी स्वयं को स्थिर कर सकते हैं, किंतु वह उन साधकों की स्थिति नहीं थी जो अपनी उच्च आध्यात्मिक स्थिति से पतित हो जाते हैं, न उन साधकों की स्थिति थी जिनके के लिए

एक बार आरोह करने के पश्चात अवरोह सम्भव नहीं रहता। ठाकुर तो उन ईश्वर कोटि लोगों की बात कर रहे थे, जो भगवान में रमे रहने के पश्चात भी सामान्य व्यक्ति के धरातल पर उतर सकते हैं"।[32]..

यह स्वामीजी की आध्यात्मिकता और साधनात्मकता का ही परिणाम है कि शशि से गुरु की चर्चा करते हुए उन्हें रस आने लगा था। आज गुरु की चर्चा करते हुए वे इतने अधिक आनंदित हो चुके थे कि गुरु की महिमा का बखान करने का जो प्रवाह है वह जैसे थमने का नाम ही न ले रहा हो। एक के बाद एक प्रसंग चलने लगा। यह स्वामीजी की आध्यामिकता और साधनात्मकता की विकसित प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। लेखक लिखते हैं कि "नरेंद्र की बातों का तार नहीं टूट रहा था। लगता था न केवल वह अपने प्रवाह में बोलता जा रहा है वरन गुरु चर्चा में उसे रस आ रहा था। ऊपर से देखने पर ठाकुर बड़े साधारण से व्यक्ति दिखाई देते हैं। उनका व्यवहार भी अनेक बार अधपगले व्यक्ति का सा होता है। किंतु उनकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है"।[33].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर श्री रामकृष्ण के आध्यात्मिक स्वरूप को स्वामीजी ने भलीभाँति पहचान लिया था। यह उनकी आध्यात्मिकता और साधनात्मकता के कारण ही सम्भव हो पाया था।

स्वामीजी पहले मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे। माँ भवतारिणी की प्रतिमा को पुत्तलिका कहा करते थे। प्रणाम नहीं करते थे, वे ब्राह्मसमाज की विचारधाओं से प्रभावित थे लेकिन जिस दिन गुरु को माना उस दिन उनका कहना था कि 'दासानुदास हूँ अपने उस गुरु का'। ऐसी विचारधारा का उदय होना साधनात्मकता और आध्यात्मिकता के कारण ही है। पिता की मृत्यु के बाद जब स्वामीजी कार्य की तलाश में इधर-उधर अपने मित्रों के यहाँ भटक रहे हैं परंतु उन्हें कहीं भी आजीविका की प्राप्ति नहीं हो पा रही थी। अंत में जब वे अपने गुरु ठाकुर श्री रामकृष्ण के पास जाते हैं और ठाकुर से अपनी माता और छोटे-छोटे भाई-बहनों के भरण-पोषण की बात होती है, विशेष रूप से स्वामीजी का परिवार आर्थिक तंगी और भुखमरी के हालातों से गुज़र रहा था। बड़ी ही कठिन परिस्थिति थी। घर के संयुक्त परिवार में भी पारिवारिक सम्पत्ति को लेकर भयंकर आपसी विवाद चल रहा था। ऐसी परिस्थिति में जब वे एक बार दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास जाते हैं तो ठाकुर स्वामीजी

से कहते हैं कि 'आज मंगलवार का दिन है,जा आज की रात मंदिर और माँगना है जो कुछ माँ से ये वचन मैं देता हूँ वो तुझे मिलेगा'।अपने गुरु के इस आश्वासन को सुनकर वे मंदिर में जाते हैं तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि माँ जैसे साक्षात उनके समक्ष जीवंत रूप में खड़ी हों और आस-पास का सम्पूर्ण वातावरण जैसे जीवंत ही हो उठा हो। अपनी माता और छोटे भाई-बहनों के लिए भोजन वस्त्र और आवास तथा तथा धन-सम्पत्ति की माँग करने गए थे परंतु वे माँग नहीं पाए इसके बदले उन्होंने विवेक, भक्ति और वैराग्य की माँग की। ऐसा एक बार नहीं बल्कि तीन बार हुआ और तीनों ही बार उन्होंने ज्ञान,भक्ति और वैराग्य की ही माँग की। पहली बार जब वे गए और मंदिर के भीतर से लौट आए तो गुरु ने जब उनसे पूछा कि उन्होंने अपने लिए धन-सम्पत्ति की माँग की थी या नहीं तब उन्होंने उत्तर में कहा था कि वे यह बात भूल गए थे। दूसरी बार भी वहीं बात हुई। तब गुरु ने तीसरी बार उन्हें भेजा तो तीसरी बार उन्हें अपने परिवार के लिए धन-सम्पत्ति की माँग में में लज्जा आ रही थी और तब भी उन्होंने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की माँग कीऔर लौट आए।गुरु को तो इस बात का आभास हो चुका था कि वे यह चीज़ें माँ से माँग नहीं पाए हैं तब गुरु ने उनसे कहा था कि 'मूर्ख जब तू ही अपने लिए नहीं माँगेगा तो कोई तुझे क्या देगा'। तब स्वामी विवेकानंद ने जो कहा था वह इस प्रकार है 'जब जगजननी सामने खड़ी हों और कह रहीं हों माँग तो क्या कद्दू, कुमढ़ा माँगू'। स्वामीजी के जीवन में ऐसा सम्भव उनकी आध्यात्मिकता और साधनात्मकता के परिणाम स्वरूप ही सम्भव हुआ। बचपन से उनके मन में जिस आध्यात्मिकता और साधनात्मकता के बीज का रोपण हुआ था ठाकुर श्री रामकृष्ण के सानिध्य में उसका चरम विकास हुआ। नरेंद्र कोहली के उपन्यास में युवक नरेंद्र के विचारों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

युवक नरेंद्र के मन में विचार उभरता है कि ठाकुर को जानना चाहिए उनके बारे में जानकर और उनके विषय में बात कर समाप्त नहीं किया जा सकता। यह उनकी साधनात्मकता और आध्यात्मिकता ही है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में "जानना तो ठाकुर को चाहिए। उन्हें जितना भी जाना जाए कम है। हम समझते हैं कि उन्हें पूर्णतः जानते हैं, बहुत जानते हैं, किंतु होत्सस क्या है --- वे एक नया वाक्य कह देते हैं और हमारे सामने ज्ञान का एक नया संसार खुल जाता है"।[34].. इस प्रकार इन पंक्तियों के आधार पर यह कहा

जा सकता है कि यह उनकी साधनात्मकता और आध्यात्मिकता का ही परिणाम है कि पहले जिस गुरु को वे नहीं मानते थे उन्हें वे एक असीम रूप में देख रहे हैं और वे अनंत ब्रह्म स्वरूप है। सामान्य बुद्धि के माध्यम से उन्हें जाना नहीं जा सकता। गुरु के स्वरूप को जानने के लिए तो साधनात्मक बुद्धि की ही ज़रूरत है। सदगुरु की महिमा अनंत होती है।

स्वामीजी जब अपने परिव्राजक जीवन में भारत भ्रमण करते हुए महाराष्ट्र में भाटे नामक एक वकील के घर में ठहरे हुए थे और तारकुंडे नामक एक व्यक्ति और उनके मित्रों के साथ विज्ञान और धर्म के विषय में चर्चा करते हुए स्वामीजी ने कहा कि "धर्म अनुभव का विषय है, बुद्धि के द्वारा समझने का नहीं। अनुभव के लिए प्रयत्न करना ही होगा, तब उसका सत्यासत्य समझा जाएगा"।[35].. आलोच्य गद्यांश में यह बताया गया है कि आध्यात्मिक बनने के लिए अनुभव और प्रयत्न की आवश्यकता है। तर्क की आवश्यकता नहीं।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38

2 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38

3 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 38, 39

4 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 44

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 37

6 Narendra Kohli in you tube Ramkrishna Mission, Rajkot https://www.youtube.com/watch?v=3GCcaC-CSlo&t=1528s

7 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो, खंड निर्माण, पृष्ठ संख्या 241, 242

8 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 94

[9] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 237

[10] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 237

[11] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 176

[12] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 177

[13] नरेंद्र कोहली, न भूतो न भविष्यति, पृष्ठ संख्या 18

[14] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 204

[15] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 204

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 206

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 242

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 217

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 218

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 279

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 249

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 249

[23] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 254

[24] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 254

[25] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 257

[26] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 1

[27] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 1

[28] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 10

[29] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 10

[30] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 15

[31] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 16

[32] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 1

[33] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 24

[34] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 19

[35] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 102

ii. समकाल का परिप्रेक्ष्य

समकाल शब्द का शाब्दिक अर्थ है जो काल इस समय चल रहा है। समकाल या समकालीनता एक ऐसा कालखंड है जिसका कोई अंत नहीं है। कोई भी लेखक किसी भी कृति की रचना करते समय समकालीन परिवेश को ध्यान में रखता है।

यह परिस्थिति जिस प्रकार कबीर के ज़माने में थी ठीक उसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस के ज़माने में भी थी तभी तो वे कहते हैं "लोग स्त्री-पुत्र के शोक में घड़ों आँसू बहाते हैं। विषय और धन के लिए तरसते हैं। किंतु ईश्वर के दर्शन नहीं हुए – कहकर कौन रोता है ? कौन यह कहकर दुखी होता है जैसा कि नरेंद्र ने गाया "जाबे कि है दिन आमार बिफले चालिए।" आगे लेखक नरेंद्र कोहली ने ठाकुर की बातों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "ठाकुर कहते जा रहे थे, ईश्वर को मैं नहीं पा सका यह सोचकर यदि कोई व्याकुल होकर उन्हें पुकारता है तो वे अवश्य ही दर्शन देते हैं"।[1].. आज की इस 21वीं शताब्दी में भी मानव का मन ईश्वर के प्रति आकर्षित नहीं होता है। इस प्रकार जो सदगुरु और सच्चे साधु होते हैं उनका मन सदैव इस बात के लिए रोता है कि संसार भगवत प्रेमिक क्यों नहीं बन पा रहा है। आज मानव का जीवन विषय वासनाओं के प्रति ही डूबा हुआ है।

तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास में लेखक नरेंद्र कोहली ने समकालीन परिप्रेक्ष्य को निम्न लिखित विंदुओं में दिखाया है।

1) सच्चे दानी का अभाव :

आज एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि अगर कहीं कुछ वस्तुओं का दान किया जाता है विशेष रूप से किसी सच्चे संत महात्मा को तो मनुष्य यह दान भले मन से नहीं करता है। कई लोग ऐसे हैं जो विषयी भाव से जुड़े होकर दान-दक्षिणा दिया करते हैं। मानव में सात्विक भावों का अभाव होता चला जा रहा है। 19वीं शताब्दी में ऐसी परिस्थिति थी। भारतीय समकालीन समाज में भी ऐसी चीज़ें देखने को मिलती हैं। ऐसी परिस्थिति के कारण मनुष्य का जीवन दुखमय हो गया है। तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास में समकालीन परिप्रेक्ष्य के प्रसंग में एक उदाहरण इस प्रकार है। एक बार ठाकुर श्री रामकृष्ण

के पास कुछ व्यापारी भक्त उनके दर्शन के लिए आए थे और साथ ही ठाकुर के लिए भेंट स्वरूप कुछ चीज़ें लाए थे। परंतु ठाकुर ने उस भेंट को स्वीकार नहीं किया और न ही उन्होंने अपने किसी अन्य भक्त या शिष्य को यह खाने के दिया। लेखक नरेंद्र कोहली ने ठाकुर की विचारधाराओं को इस प्रकार लिपिबद्ध किया है "वे व्यापारी लोग निष्काम भाव से दान करना नहीं जानते। एक बीड़ा पान देते समय भी सोलहों कामनाएँ जोड़ देते हैं। इस प्रकार सकाम दाता का अन्न खाने से भक्ति ही हानि होती है"।[2]..

2) भक्त होने का दिखावा :

आज के इस समकालीन परिवेश में भक्त किस प्रकार के होते हैं यह तथ्य उपन्यास में वर्णित 'प्रताप चंद्र हाजरा के माध्यम से देखा जा सकता है। हाजरा भले ही ठाकुर रामकृष्ण और स्वामी विवेकानंद के ज़माने का एक व्यक्ति है परंतु इस समकालीन परिप्रेक्ष्य में उसे एक ऐसे भक्त के रूप में देखा जा सकता है जो भक्त होने का दिखावा मात्र कर रहा है किंतु वह वास्तविक ईश्वर भक्त नहीं है। स्वयं ठाकुर रामकृष्ण का कहना है कि लेखक लिखते हैं "वह तो पाखंड कर रहा है, ठाकुर बोले, कहता है मुझे ईश्वर चाहिए और चाहता है रूपए ! घर में ऋण है, इसलिए जप और ध्यान करता है। कहता है ईश्वर रूपए देंगे। उन्होंने नरेंद्र की ओर देखा, वह ईश्वर का ध्यान करता है कि रूपए का" ?[3]..

3) मन में उठे द्वन्द एवं समाधान :

स्वामी के गुरुभ्राता शशिभूषण चक्रवर्ती की मान्यता थी कि अगर विद्यालयी जीवन के दृष्टिकोण से देखा जाए तो साधु संतों की संगति से यह जीवन नष्ट हो जाता है। इस विषय में स्वामी विवेकानंद का दृष्टिकोण क्या कहता है ? लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "तो नरेंद्र ! मेरे मन में कभी-कभी आधुनिक शिक्षा को लेकर उलझन होती है। जो शिक्षा कॉलेज में प्राप्त कर रहे हैं, उसकी दृष्टि से सोचे तो लगता है कि एक सन्यासी की बातों में आकर अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं, और अपने गुरु से प्राप्त ज्ञान की दृष्टि से सोचें तो लगता है कि कॉलेज क्या करने जाते हैं ? तुम इस विषय में क्या सोचते हो" ?[4]..

शशि की इस जिज्ञासा के उत्तर में स्वामी विवेकानंद ने जो कहा वह इस प्रकार है। "नरेंद्र ने जैसे क्षण भर अपने भीतर डुबकी लगाई और बोला, उस प्रत्येक क्षण को, जिसमें

मैं किसी अन्य विषय का चिंतन करता हूँ, अपनी हानि समझता हूँ, भले ही उस चिंतन के विषय भौतिक विज्ञानों के आश्चर्य ही क्यों न हों। जो बातें मुझे इस सत्य से दूर हटाती हैं वे सब व्यर्थ हैं।[5].. अर्थात् शिक्षा मानव जीवन की प्रगति के लिए आवश्यक है। मानव का जीवन चाहे किसी भी युग से जुड़ा हुआ ही क्यों न हो शिक्षा उसके लिए आवश्यक है।

स्वामी विवेकानंद की मान्यता है कि वहीं शिक्षा वास्तविक शिक्षा है और वहीं गुरु वास्तविक गुरु है जिनके माध्यम से व्यक्ति को उसके जीवन में वास्तविक सत्य का साक्षात्कार हो सके।

4) साधु होने का दिखावा :

आलोच्य उपन्यास श्रृंखला के द्वितीय खंड में एक ऐसे साधु का वर्णन किया गया है जिसकी प्रवृत्ति साधु की नहीं है। उसने केवल साधु का वेश ही धारण किया है। वह अत्यंत क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति है। ठाकुर रामकृष्ण ने उसे तमों प्रधान नारायण की संज्ञा दी थी। इस साधु को आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में अगर देखा जाए तो वह ऐसे साधुओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो वास्तव में साधु-संत नहीं होते परंतु दिखावा बहुत करते हैं कि बहुत बड़े स्तर के कोई संत महात्मा हैं।

5) भक्ति की भावना से प्रदान की गई वस्तु को स्वीकारना :

सच्चे, सरल और भक्ति भाव से दी हुई सामग्रियों को ही संत महात्मा और भगवान के द्वारा ग्रहण किया जाता है। छल-कपट से दी हुई सामग्रियों को चाहे वह प्रसाद ही क्यों न हो उसे भगवान ग्रहण नहीं करते हैं। तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के साधना नामक खंड में एक व्यक्ति का उल्लेख किया गया है जो केवल साधु वेशधारी है लेकिन वह वास्तविक साधु नहीं है। ठाकुर जब राघव पंडित के घर जा रहे थे तब वे अचानक भावाविष्ट हो जाते हैं तब कुछ महिलाएँ उन्हें प्रसाद खिलाने हेतु प्रतीक्षा कर रही थीं कि कब ठाकुर प्रकृतिस्थ होंगे और कब वे उन्हें नैवेद्य अर्पित कर पाएँगी। उसी समय एक साधु वेशधारी व्यक्ति वहाँ आता है और उन महिलाओं से छीनकर नैवद्य ठाकुर को खिलाता है परंतु श्री रामकृष्ण ने उस नैवेद्य को ग्रहण नहीं किया उन्होंने तुरंत उस पदार्थ को फेंक दिया। कालांतर में पंक्ति में खड़ी महिलाओं ने उन्हें भक्तिपूर्वक नैवेद्य अर्पित किया और उन्होंने उसे ग्रहण किया।

इस प्रकार भगवान भक्ति के प्यासे होते हैं। लेकिन आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में अगर देखा जाए तो व्यक्ति इस बात को नहीं समझ पाता है। जिस साधु ने रामकृष्ण को प्रसाद खिलाया था वह वास्तव में कोई साधु नहीं था। केवल वस्त्र ही उसने साधु के पहन रखे थे। ठाकुर इस बात को समझ चुके थे परिणाम स्वरूप उन्होंने उस व्यक्ति के द्वारा खिलाए हुए प्रसाद को ग्रहण नहीं किया था और उसे फेंक दिया था। उसके द्वारा दिए हुए खाद्यान्न में सात्विक भाव का अभाव था। ठाकुर इस बात को समझ चुके थे। महिलाओं के द्वारा प्रदान किए गए प्रसाद को वे अत्यंत आनंदपूर्वक ग्रहण करते हैं क्योंकि उसमें भक्ति की भावना निहित थी। यह साधु वेशधारी व्यक्ति आज के उन व्यक्तियों में से है जो दूसरों की भक्ति भाव से अर्जित सम्पत्ति को अपना समझता है। दूसरों की प्रसिद्धि को अपने नाम पर करना चाहता है। भगवान की कृपा प्राप्त करने के लिए स्वयं कष्ट नहीं करता है। लेकिन एक समय ऐसा आता है जब भगवान उसकी चाल को समझ जाते हैं और उसे सफल नहीं होने देते हैं। लेखक लिखते हैं कि "साधु वेशधारी एक बाबा अकस्मात् कहीं से झपटता हुआ आया और एक महिला के हाथ से उसका नैवेद्य-पात्र छीनकर ठाकुर के एकदम निकट पहुँच गया। उसने जैसे आत्मीयता अथवा भक्ति से विह्वल होकर, नैवेद्य का एक कोर अपने हाथों से ठाकुर के मुख में डाल दिया, मानो भगवान को भोग लगा रहा हो। लेखक लिखते हैं कि "भावावेश में स्थिर निश्चल ही नहीं प्रायः निःस्पंद खड़ा ठाकुर का शरीर उसके स्पर्श मात्र से झनझना उठा, जैसे विद्युत का अत्यंत शक्तिशाली प्रवाह उनके रक्त के साथ सारे शरीर में संचारित होकर, उन्हें असह्य पीड़ा दे रहा हो, ठाकुर का भाव भंग हो गया।उन्होंने तत्काल मुख से वह खाद्य पदार्थ थूक ही नहीं दिया पानी माँगकर कुला कर डाला"।[6]..

आगे लेखक लिखते हैं कि "सारी की सारी भीड़ की दृष्टि उस बाबा पर जाकर केंद्रित हुई। दृष्टि में उपहास था और जिह्वा पर कटाक्ष : बाबा भीड़ में से तत्काल निकल गया। अपने सामने प्रस्तुत पात्रों में से ठाकुर ने एक कणिका ग्रहण की और सारा प्रसाद भक्तों में वितरित करने को दिया"।[7]..

6) स्वतंत्रता का अभाव :

नारी जीवन के समकालीन परिप्रेक्ष्य के आधार पर 'तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास को देखा जा सकता है। महिलाएँ उतनी स्वतंत्र नहीं दिखाई देती हैं जितने पुरुष दिखाई देते हैं। आलोच्य उपन्यास के तीसरे खंड में स्वामी विवेकानंद की छोटी बहन योगेन्द्रबाला की आत्महत्या के माध्यम से यहीं दर्शाया है कि विवाह के उपरांत महिलाएँ ससुराल में विभिन्न रूपों से अत्याचारित होती चली जाती हैं।स्वामीजी की बहन के साथ जो घटना घटित हुई वह केवल 19वीं शताब्दी का ही यथार्थ नहीं है बल्कि वह आज की इस 21वीं शताब्दी का भी यथार्थ है। योगेन्द्रबाला कहीं न कहीं उन विवाहित महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है जो विवाहित होने के पश्चात ससुराल में घटित आत्याचारों के कारण अपने इस अमूल्य जीवन का बलिदान दे देती हैं क्योंकि उन्हें अपनी समस्याओं को अभिव्यक्त करने की आज़ादी नहीं दी जाती। यहाँ स्वामीजी इसके ख़िलाफ़ है कि एक स्त्री को संतान उत्पन्न करने वाली मशीन समझा जाए।स्वामी विवेकानंद ने इस प्रकार की समस्याओं का मूल कारण नारियों में शिक्षा का अभाव माना है वे यह भी मानते हैं कि नारियों को ब्रह्मवादिन बनने का अवसर ही नहीं दिया जाता है।

नारियों को भी अगर पुरुषों के समान शिक्षा मिल सके तो उसके माध्यम से उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागृति आ सकती है। स्वामीजी की विचारधाराओं का उल्लेख करते हुए लेखक यह बताते है कि स्त्री-शिक्षा को आगे बढ़ाने हेतु प्रत्येक व्यक्ति को आगे आना होगा। वे स्वयं नारी शिक्षा हेतु आगे आना चाहते थे। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "स्वामी को लगा कि उनके मन में जैसे योगेन्द्र की पीड़ा तिरोहित हो गई है और उसके स्थान पर भारतीय नारी की पीड़ा आकर बैठ गई है। उन्हें नारी-शिक्षा के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता थी। बिना शिक्षा के नारी का उद्धार नहीं हो सकता"।[8].. यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के माध्यम से नारी जीवन में सुधार होगा। वे अपने जीवन के मूल्यबोध को समझ पाएँगी।

7) विदेशी भाषा के प्रति प्रेम :

देश की स्वतंत्रता के इतने वर्षों के बाद भी अपना देश विदेशी भाषा विशेष रूप से अंग्रेज़ी भाषा का दीवाना है। लोगों में यह दिवानापन इतना अधिक है कि वे अंग्रेज़ी भाषा की जानकारी न रखने वालों पिछड़ा हुआ मानते हैं। हिंदी, बंगला, मलयालम आदि भाषाओं को जानने वालों को पिछड़ा हुआ या अशिक्षित मानते हैं। जिस प्रकार स्वामीजी के युग में लोग अंग्रेज़ी के दीवाने थे वैसे ही आज की इस 21वीं शताब्दी में भी हैं। लेखक नरेंद्र कोहली ने आग्ल भाषा के शिक्षण को लेकर एक घटना का उल्लेख किया है।यह घटना उस समय की है जिस समय स्वामीजी सुकिया स्ट्रीट में पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा स्थापित विद्यालय मेट्रोपोलिटन इन्स्टिटूशन में पढ़ रहे थे उस समय उन्हें अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए चुना गया कि इस बच्चे को अंग्रेज़ी पढ़ाई जाएगी। लेकिन स्वामीजी अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं। उनकी मान्यता थी कि पहले अपनेआप को जानना चाहिए फिर अपने देश को जानना चाहिए। अब यहाँ बात यह आती है जब तक व्यक्ति को अपनी मातृभाषा का ज्ञान नहीं होगा, अपनी राष्ट्र भाषा का ज्ञान नहीं होगा तब तक वह अपने देश को, समाज को, अपने जीवन को जान नहीं पाएगा। आज भारत के लोग एक ऐसे युग में जी रहे हैं कि अपनी निजी संस्कृति और भाषा को ही भूलते चले जा रहे हैं। आज इस समाज में कई लोग ऐसे भी मौजूद हैं जिन्हें अपने गाँव की बोली बोलने में भी लज्जा की अनुभूति होती है। उदाहरण के लिए हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार डॉक्टर कृष्ण बिहारी मिश्र अपनी “अराजक उल्लास नामक निबंध की पुस्तक में लिखते हैं कि “ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूँ जिन्हें अपने हवा-पानी और बोली-बानी से इतना परहेज है कि विशिष्टता-ग्रंथि से आक्रांत होकर अपनी विजातीय भाषा चबा-चबाकर बोलते हैं”।[9]..

8) सच्चे साधु की कृपा :

समकालीन परिप्रेक्ष्य में ऐसे व्यक्ति जो ईश्वर के किसी स्वरूप के प्रति अविश्वास व्यक्त करते हैं अथवा उनके मन में अनास्था रहती है अगर सौभाग्य से उन्हें कभी अपने जीवन में किसी एक सच्चे संत या साधु महात्मा का दर्शन हो जाता है तो उनकी कृपा दृष्टि के परिणाम स्वरूप उस स्वरूप के प्रति भी आस्था प्रकट होती है जिसके प्रति उनके मन में

अनास्था थी। आलोच्य उपन्यास तोड़ो कारा तोड़ो के तीसरे खंड में जयपुर राज्य के फ़ौज बक्शी 'ठाकुर हरिसिंह लाड़खानी एक ऐसे ही व्यक्ति थे जो भगवान के सगुण या साकार रूप में विश्वास नहीं करते थे। वे वेदांत में विश्वास करते थे और उनकी मान्यता यह थी कि त्रिगुणात्मक माया का वह स्वामी माया के अधीन होकर मातृ गर्भ से जन्म ही नहीं ले सकता है। उनकी विचारधाओं का उल्लेख करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "मेरी समस्या यह है स्वामीजी कि मैं यह कल्पना ही नहीं कर पाता कि इस त्रिगुणात्मक माया का वह स्वामी, निर्गुण निराकार परम पुरुष अपनी ही माया के अधीन होकर त्रिगुणात्मक प्रकृति द्वारा उत्पन्न किया गया यह मानव शरीर धारण करेगा ? इस शरीर की अपनी सीमाएँ हैं। इसे माँ के गर्भ से जन्म लेना पड़ता है। प्राकृतिक शरीर के दुःख-सुख भोगने पड़ते हैं। शरीर धर्म का निर्वाह करना पड़ता है। भोजन भी करना पड़ता है और शौच के लिए भी जाना पड़ता है। लोभ क्रोध और ईर्ष्या-द्वेष को भी झेलना पड़ता है। निर्गुण ब्रह्म के संदर्भ में इन बातों की कल्पना असह्य लगती है"।[10]..

हरिसिंह यह भी कहते हैं कि "हमारे अब मूर्ति पूजा के संस्कार ही नहीं रहे। किसी विग्रह में ईश्वर के सत्ता की कल्पना ही नहीं कर सकते। जब तक किसी विग्रह में जीवंत ईश्वर का अनुभव ही न कर लें तब तक भारी कठिनाई है"।[11]..

स्वामी विवेकानंद ने भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस के माध्यम से ठाकुर हरिसिंह को अवतारवाद और सगुण ब्रह्म के बारे में समझाने का प्रयास किया। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि अवतारवाद के तत्व को वे समझ ही नहीं पा रहे थे। तभी अचानक भ्रमण करने का कार्यक्रम बनता है और स्वामीजी हरिसिंह के साथ भ्रमण हेतु निकलते हैं। वे जब मार्ग में भ्रमण करते हुए चले जा रहे थे तब उन्होंने देखा कुछ भक्त जनों ने मिलकर भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति को लेकर एक विशाल शोभायात्रा निकाली है और एक व्यक्ति अपने मस्तक पर कृष्ण की प्रतिमा को उठाए लिए जा रहा था। हरिसिंह ने जब प्रतिमा की ओर देखा तब वह जीवंत हो उठी थी। ऐसा लग रहा था कि वह प्रतिमा नहीं बल्कि स्वयं भगवान श्री कृष्ण थे जो तृभंगी मुद्रा में खड़े होकर अत्यंत प्रसन्न होकर बाँसुरी बजा रहे थे। यह उनके लिए आश्चर्य का विषय था। ऐसी जीवंत प्रतिमा उन्होंने तो

स्वयं कभी नहीं देखा था। इस प्रकार अगर मानव को सौभाग्य से वास्तविक संत की कृपा प्राप्त होती है तो वह ईश्वर के जिस रूप में विश्वास नहीं करता है उस रूप पर भी उसका विश्वास स्थापित हो जाता है।

9) प्राचीन ज्ञान के भण्डार से दूर :

समकाल के परिप्रेक्ष्य पर बात करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' के तीसरे खंड में एक विषय की ओर ईशारा किया है जिस पर लोगों को ध्यान देने की आवश्यकता है जिसमें यह बताया गया है कि इस समकालीन परिप्रेक्ष्य में मनुष्य एक ऐसी परिस्थिति में जी रहा है जिसमें भारत के प्राचीन ग्रंथ जो ज्ञान के भण्डार हैं जिसमें प्राचीन इतिहास छुपे हुए हैं उससे हिंदुओं ने दूरी बना ली है। ये जो विभिन्न सम्प्रदाय बनकर तैयार हुए हैं इन्हें संचालित करने वाले जो लोग हैं उन्हीं के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि विभिन्न समुदाय से जुड़ी जो सर्वोपयोगी और प्रेरणादायक शिक्षाएँ हैं उनसे मानव को वंचित रखा जाता है। स्वामीजी कहते हैं कि "वेदांत, ब्राह्मसमाज अथवा आर्यसमाज के नाम पर निराकारवादी हो गए हैं, इसीलिए पुराणों से भी एक प्रकार का भेद पाल बैठे हैं। लोगों ने रामायण, महाभारतऔर भागवत से भी एक दूरी बना ली है। यह कोई शुभ लक्षण नहीं है। इसमें हिंदुओं में बहुत सारे विभाजन उत्पन्न हो जाएँगे। वेदांत के नाम पर सारी मानव जाति ही नहीं, मनुष्येतर प्राणियों में भी अभेद मानने वाले वेदान्ती, हिंदुओं में भी बीसियों भेद उत्पन्न कर रहे हैं"।[12]..

10) दूसरों को महत्व न देना :

लेखक नरेंद्र कोहली ने 'तोड़ो कारा तोड़ो' उपन्यास के तीसरे खंड में अपने उपन्यास के पात्र स्वामी विवेकानंद के कथन के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि आज के इस समकालीन परिप्रेक्ष्य के आधार पर अगर बात की जाए तो यह कहना चाहिए कि आज मानव इतना अहंकारी हो चुका है कि वह आपस में लड़ता और झगड़ता चला रहा है। आज के युग में व्यक्ति यह भूल चुका है कि वह जिस समाज में जी रहा है उसमें सभी का समान महत्व है किसी को अपने से हीन या छोटा नहीं समझना चाहिए। समाज में कोई व्यक्ति किसी से कुछ भी सीखना ही नहीं चाहता है। अगर यह कहा जाए तो ग़लत नहीं

होगा कि समाज में भले चीज़ों के आदान-प्रदान की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही समाप्त हो गई है। एक ऐसी परिस्थिति की उत्पत्ति हो चुकी है कि समाज का कोई भी वर्ग न तो किसी को देना चाहता है और न ही किसी से लेना चाहता है। समाज में किसी भी व्यक्ति को महत्व हीन नहीं समझना चाहिए इस बात को स्वामीजी ने एक कथा के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। यह कथा में यह स्वामीजी के द्वारा यह बताया गया कि एक व्यक्ति कहीं जा रहा था। मार्ग में सुंदर वट वृक्ष की छाया देखकर उसने उसके नीचे लेटकर विश्राम किया। लेटे हुए जब उसकी दृष्टि वट के फलों की ओर गई उसके मन में विचार आया कि भगवान बड़े विचित्र हैं। वे कोमल-सी बेल पर भारी-भरकम फल लगा देते हैं तथा इतने विशाल वट वृक्ष में गूलर जैसा छोटा फल उगाते हैं। तभी हवा के झोंके के साथ गूलर का एक छोटा-सा फल उसके मस्तक पर गिर पड़ा। उसके माथे पर ऐसी चोट लगी कि किसी ने जैसे ज़ोर से थप्पड़ मारा हो। तब गूलर के उस छोटे फल के महत्व को समझने में बाध्य हो गया। यहाँ मुंशी जगनमोहनलाल जो कि राजस्थान प्रदेश के अंतर्गत आने वाले खेतड़ी राज्य के राजा अजितसिंह के प्राईवेट सेक्रेटरी थे उन्होंने भी स्वामीजी की इस विचारधारा का समर्थन किया। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि “आप ठीक कहते हैं स्वामीजी ! जगनमोहन हँसे, ऐसे जीव हैं, जो दूसरों से सीखते कम हैं और उन्हें सीखाने का प्रयत्न अधिक करते हैं”।[13].. मुंशी जगनमोहनलाल द्वारा स्वामी विवेकानंद को कथित इस पंक्ति की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। आज के इस समकालीन परिप्रेक्ष्य मनुष्य बड़ा ही अहंकारी हो चुका है कि वह स्वयं को ही सबसे बड़ा ज्ञानी और सर्वज्ञ मान कर चलता है।

11) धन का लोभ :

धन का लोभ व्यक्ति के चरित्र को किस प्रकार परिवर्तित करता है। अपने ही लोग किस प्रकार लोभी हो जाते हैं इसे ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंस के भतीजे रामलाल चट्टोपाध्याय के चरित्र के द्वारा दिखाया गया है। वह भले ही 19वीं शताब्दी का एक ब्राह्मण युवक है जो हृदयराम मुखर्जी की भाँति जोकि ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंस का सगा भांजा था ये दोनों एक ही थाली के चट्टे-बट्टे हैं। ठाकुर श्री रामकृष्ण जब गले के कैंसर से पीड़ित थे और उन्हें ईलाज के लिए जब काशीपुर में लाया जाता है तब दक्षिणेश्वर में भवतारिणी

के मंदिर में नित्य पूजन का दायित्व रामलाल को दिया जाता है। यहाँ रामलाल ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करता हुआ दिखाई देता है जो भ्रष्टाचार एवं मिथ्या का सहारा लेकर अपने ही लोगों को लूटते हैं। आलोच्य उपन्यास के दूसरे खंड में इस बात का वर्णन है कि अपनी विधवा काकी के ख़िलाफ़ खजांची को बोलकर ठाकुर को मिलने वाले सात रूपए पेंशन बंद करवा दिया। यह एक विधवा के प्रति अपने रिश्तेदारों द्वारा किया गया अन्याय है। आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में रामलाल चटर्जी उन्हीं लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो असहाय विधवाओं को उनके वास्तविक अधिकारों से वंचित करते हैं। हालाँकि यह अलग बात है कि माँ शारदा एक संत की भार्या थीं और स्वयं भी एक तपस्विनी महिला थीं। ठाकुर श्री रामकृष्ण की कृपा के परिणाम स्वरूप उन्हें उनके ससुराल से दुत्कारे जाने के बाद ठाकुर के शिष्यों के द्वारा उनके भोजन वस्त्र और आवास की सुविधा दिलाई गई। यह ठाकुर की ही भविष्यवाणी थी उन्होंने माँ शारदा से एक बार कहा भी था कि "तुम्हें मोटे अन्न-वस्त्र का कभी अभाव नहीं होगा। देखो किसी के सामने एक पैसे के लिए हाथ मत फैलाना। यदि एक पैसे के लिए भी किसी के सामने हाथ फैला दिया, तो समझना अपना मस्तक ही बेच दिया"।[14].. ठाकुर रामकृष्ण ने एक बार उनसे कहा था कि 'तुम्हें सोचना क्या है ? इन्होंने मेरा जिस प्रकार मेरा किया है वैसा तुम्हारा भी करेंगे'। समकालीन परिप्रेक्ष्य में संसार का प्रत्येक व्यक्ति धन-सम्पत्ति आदि के लालच में पड़ा हुआ है।

12) आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता :

अगर शिक्षा की बात की जाए तो शिक्षा वहीं है जिसके माध्यम से देश के युवाओं को स्वरोज़गार का अवसर मिल सके। स्वामीजी आधुनिक शिक्षा के पक्षपाती थे। वे तकनीकी स्कूलों और इंजीनियरिंग कॉलेजों की बात करते थे। उन्होंने भारत की आज़ादी से बहुत पहले जिस प्रकार भारत की प्रगति में तकनीकी शिक्षण संस्थानों की बात की थी यदि देखा जाए तो आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में उसी का महत्व ही अधिक है। शिक्षा को लेकर स्वामी विवेकानंद के एक विचार को यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि आज के इस युग में बड़े-बड़े स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा तो मिल रही है। लेकिन अब यहाँ बात यह है कि क्या सद विचारों को स्नायुओं से जोड़ने का अवसर दिया जा रहा है ? अगर

स्वामी विवेकानंद के ही शब्दों में कहा जाए तो "विचारों का स्नायु से घनिष्ट सम्बंध जोड़ने का नाम शिक्षा है"।[15].. अर्थात् शिक्षा का अर्थ है अपने भीतर सद गुणों का विकास करते हुए उन्हें जीवन में उतारना।

13) शिक्षा को जाति एवं राजनीति केंद्रित बना देना :

शिक्षा किसी भी समाज के लिए मेरुदंड होती है। उसके बिना जीवन की प्रगति सुचारू रूप से नहीं हो सकती। कहने के लिए तो कहा जाता है कि शिक्षा का वितरण समाज में समान रूप से होना चाहिए लेकिन भारतीय एक ऐसे समाज में जी रहे हैं जिसकी कथनी और करनी में काफ़ी अंतर दिखाई देता है। आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में यह बात और भी सत्य प्रतीत होती है। शिक्षा को जाति आधारित बनाकर रख दिया गया है और इतना ही नहीं देश की राजनीति भी इसके पीछे जुड़ी हुई है। शिक्षा राजनैतिक नेताओं के लिए स्वार्थ का पर्याय बन कर रह गया है और इसे ही चरितार्थ करने के लिए वे देश के आम नागरिकों को विशेष रूप से कहा जाए तो निम्न जाति के लोगों को शिक्षा के आलोक से वंचित रखा जाता है।भारतीय समाज में निम्न वर्ग के लोगों को इसलिए शिक्षा से वंचित रखा जाता है ताकि वे राजनैतिक नेताओं की, देश के शासक वर्ग की जी हुज़री कर सकें। आलोच्य उपन्यास के चौथे खंड में राजस्थान के अंतर्गत आने वाले खेतड़ी नामक प्रांत जोकि राजा अजितसिंह का राज्य था, वहाँ 'दरोगा नामक जाति के लोगों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। स्वामी विवेकानंद के गुरुभ्राता अखंडानंद ने जब दरोगा जाति के मुखिया से पूछा कि "तुम्हारी जाति के सैकड़ों घर हैं और प्रत्येक घर में पाठशाला जाने योग्य अवस्था के बच्चे हैं। आप उन्हें पाठशाला क्यों नहीं भेजते"।[16]..

इस बात के उत्तर में चौधरी का कहा था कि बचपन में ही उनके समाज के बच्चों को राजपरिवार में अथवा यह भी कहा जा सकता है कि देश के ऐसे बड़े-बड़े अधिकारियों के यहाँ नौकरी करने का अवसर प्राप्त हो जाता है जिनका सम्बंध देश की शासन व्यवस्था से है। जब समाज के छोटे-छोटे बच्चों को उनके लिए आजीविका का साधन बाक़ायदा बिना पढ़े ही प्राप्त हो जाता तो फिर पढ़-लिखकर विद्वान बनने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यहाँ अगर यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी राजनीति आम लोगों में किस प्रकार

की धारणा को विकसित करने में सहायता करती है। मुंशी जगमोहनलाल राजा अजितसिंह से कहते हैं कि "यदि वे पढ़-लिखकर अधिकारी बन जाएँगे, तो राजा और ठाकुरों की सेवा के लिए चाकर कहाँ से आएँगे"।[17]..

यहाँ यह बताया जा सकता है कि भारत की राजनीति से जुड़े हुए नेता इस क़दर बदतर हो गए हैं कि वे समाज के वंचित तकबे के लोगों को इसलिए यथोचित शिक्षा नहीं देना चाहते ताकि वे उन्हें दास बनाकर पूरे जीवन उनसे अपना काम करवा सकें। अगर कोई व्यक्ति शिक्षित बन जाएगा तो देश के बड़े-बड़े राजनेता उनसे वह दासता का कार्य नहीं करवा पाएँगे। कदाचित यहीं कारण है कि मुंशी यह कहता है कि अगर इन जातियों में शिक्षा का प्रसार होगा तो अपनी योग्यता के फलस्वरूप यदि वे बड़े अधिकारी बन जाते हैं तो वे देश के शासक वर्गों की सेवा नहीं करेंगे। ऐसी बात नहीं है कि देश का प्रधान प्रशासक ही इन वंचनापरक कार्यों से जुड़ा हुआ है बल्कि राजनीतिक व्यवस्था ही ऐसी हो गई है कि उसके अधिनस्त राजनेता ही उसे इस इस तथ्य से अवगत नहीं कराते हैं कि राज्य में वास्तविक रूप में किस वर्ग का व्यक्ति किन-किन प्रकार की सुविधाओं से यथार्थ रूप से वंचित है। देश की आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी भारतवर्ष के लोग एक ऐसे दौर में जी रहे हैं जब समाज के ज़रूरतमंदों को शिक्षा के आलोक से वंचित रखा जाता है। मूल प्रशासक को इस विषय में उनके राजनेताओं के द्वारा अंधेरे में रखा जाता है कि उसके राज्य या देश में कितने लोग किन-किन सुविधाओं से वंचित हैं। इस बात को इस उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है, जब राजा अजितसिंह मुंशी से पूछते हैं कि "मुंशीजी दरोगा जाति के लोग पढ़ने-लिखने का इतना विरोध क्यों करते हैं ?"[18]..

तो इसके उत्तर में मुंशी कहता है कि "महाराज ! यदि वे पढ़-लिखकर अधिकारी हो जाएँगे, तो राजा और ठाकुरों की सेवा के लिए चाकर कहाँ से आएँगे" ? वह यह भी कहता है कि उन्हें राजसेवा के लिए आरक्षित रखा जाता है। देश की सरकारें देश की आम जनता के कल्याण हेतु बहुत सारी योजनाएँ लागू करती हैं परंतु तथाकथित राजनीतिक नेताओं के कारण ही इन योजनाओं को सुचारू रूप में जनहित में लागू नहीं किया जाता है। आलोच्य उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' के चौथे खंड में खेतड़ी के राजा अजितसिंह का कथन इस बात

की पुष्टि करता है। राजा कहते हैं कि "जानबूझकर किसी नीति के अधीन उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता है"।[19]..

मुंशीजी ने राजा के सामने यह बात स्वीकार कर लिया कि बड़े अधिकारी सर्वथा इस बात के विरोधी हैं कि दरोगा जाति के लोगों को भी शिक्षा की प्राप्ति हो। लेखक लिखते हैं कि "और अंतत: मुंशीजी ने कह ही दिया और उच्च कर्मचारी उनकी शिक्षा के सर्वथा विरोधी हैं"।[20].. इस बात को सुनकर राजा अपने राज्य में दरोगों को शिक्षा की अनुमति देते हैं। अब तक के क़ानून के अनुसार नियम यहीं था कि दरोगा जाति के लोगों के लिए शिक्षा वर्जित था इसे भी उन्होंने निरस्त कर दिया और उनके लिए विद्यालय की कक्षा के समय दिन का भोजन भी मुफ़्त कर दिया। ग़ौरतलब है राजा दरोगा जाति के साथ हो रहे अन्याय आचरण को समझ चुके थे। कदाचित यहीं कारण है कि वे उनके कल्याण के लिए यथोचित कदम उठाते हैं। वे यह भी कहते हैं कि "यह तो अन्याय है मुंशीजी"।[21]..

14) नियंत्रण में रखना :

आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में मनुष्यों के कुछ सम्बन्धी ऐसे भी हैं जो उन्हें अपने सम्पूर्ण नियंत्रण में रखना चाहते हैं और उनकी स्वतंत्रता को उनसे छीनना चाहते हैं जोकि सम्पूर्ण अनुचित है क्योंकि हर व्यक्ति की अपनी एक निजी स्वतंत्रता होती है। किसी को भी इसे समाप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। जिस प्रकार से यह सत्य है कि कभी-कभी समाज में महिलाओं के अधिकारों का हनन किया जाता है ठीक इसी प्रकार कभी-कभी समाज के पुरुष वर्गों के साथ भी इस प्रकार का आचरण किया जाता है। जिस प्रकार से सोचा जाता है कि बहू अगर घर में आती है तो उसकी अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं होगी हमने उसकी सम्पूर्ण स्वाधीनता को अपने नियंत्रण में कर लिया है, ठीक इसी प्रकार का आचरण दामादों के साथ भी किया जाता है। आलोच्य उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' के 'संदेश' नामक खंड में सेरा थार्फ की माँ उसके पति सेरा ओली बुल के साथ इसी प्रकार का आचरण करती हुई दिखाई देती है। उन पति और पत्नी के मध्य में थार्फ परिवार सदैव अपनी टाँग अड़ाता हुआ दिखाई देता है। ओली बुल इस आचरण से रूष्ट हो जाते हैं। वे कहते हैं कि "होना क्या है।वे लोग और विशेष रूप से तुम्हारी माँ, इस उत्श्रृंखल और

सनकी ओली बुल को पालतू और सम्मानजनक जामता बनाने का प्रयत्न कर रही हैं। वे मुझे घिस-घिसकर एकदम ही गोंगलू बना देना चाहते हैं।या कहूँ, बेपंदे का लोटा। मैं कब तक सहन करूँ ? सेरा ! मैं दमन नहीं कर सकता। मेरी आत्मा बहुत कष्ट पाती है। किसी दिन मैं अनियंत्रित होकर कुछ कर न बैठूँ"।[22].. आगे लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "ओली का चेहरा बता रहा था कि वे भयंकर घुटन का अनुभव कर रहे हैं"।[23]..

यानी कि अगर कोई ऐसी पक्षी जो वन में उन्मुक्त घूमता है और उसे यदि पिंजड़े में बंद कर दिया जाता है तो वह मुक्त होने के लिए छटपटाता है। ओली बुल तो मनुष्य हैं। कहा जाता है कि परतंत्र व्यक्ति सपने में भी सुख की कल्पना नहीं कर सकता। व्यक्ति यह भूल जाता है कि इस संसार के प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता से जीने का अधिकार है। किसी भी व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वाधीनता को समाप्त करने का अधिकार किसी में नहीं है।ओली बुल की मान्यता है कि उनकी सास एक ऐसी महिला हैं जो सम्पूर्ण सृष्टि को अपने नियंत्रण में रखना चाहती हैं। व्यक्ति यह भूल जाता है कि अगर किसी ने किसी व्यक्ति के बेटे और बेटी से विवाह किया है तो इसका मतलब यह नहीं है कि उस पुरुष या स्त्री की सम्पूर्ण स्वाधीनता पर उस व्यक्ति का ही नियंत्रण है।

15) सामान्य कारण को आधार बनाकर बहुओं का अपमान :

आलोच्य उपन्यास के निर्माण नामक खंड में लेखक नरेंद्र कोहली यह बताते हैं कि स्वामी विवेकानंद की पितामही एक बार जब अपने मायके से पालकी में लौटी तो विश्वनाथ दत्त की बुआ को उनका पालकी में लौटना अच्छा नहीं लगा कि उनकी जेष्ठ भ्रातृजाया उनके सामने इस प्रकार पालकी से अपनी मायके से लौटे। परिणाम स्वरूप उन्हें वापस अपने मायके की ओर लौट जाना पड़ा था।विश्वनाथ की बुआ को ननद होने के कारण अपनी जेष्ठ भ्रातृजाया को अपमानित करने का अधिकार था। गौरतलब है कि विवेकानंद के पितामह और विश्वनाथ दत्त के जनक ने यह सब अपनी आँखों से देखा था परंतु उन्होंने इस घटना को देखकर कुछ भी नहीं कहा था। विश्वनाथ दत्त की बुआ आज की इस समकालीन समय में ससुराल पक्ष के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करती हुई दिखाई देती हैं जो सामान्य कारण को आधार बनाकर बहुओं को अपमानित करते हैं और पति देखते हुए भी शांत रह जाता

है। वह अपने परिवार के लोगों को कुछ भी बोलने में असमर्थ हो जाता है और केवल एक मूक दर्शक बन कर ही रह जाता है। इस प्रकार के अन्याय का विरोध नहीं कर पाता है। यहाँ एक संभ्रांत परिवार की बहू को अपमानित करने वाली महिला रिश्ते में उसकी ननद है। वह जिस महिला का अपमान कर भगाती है वह ननद के लिए गुरु स्थानीया है। समाज में बड़े भाई की पत्नी का स्थान माँ के समान होता है। क्या कोई महिला ऐसी हो सकती है जो अपनी माँ का अपमान कर सकती है। जी हाँ विश्वनाथ दत्त की बुआ उन्हीं लोगों का प्रतिनिधित्व करती हुई है। अगर उस समय ऐसा कोई नियम होता कि कुलीन घर की महिलाएँ अपनी ननद, जो पति की छोटी बहन है उसके सामने बड़े भाई की पत्नी पालकी पर नहीं आ सकती अगर तब भी वह पालकी पर आती तो भी ननद को बड़ी भाभी को अपमानित नहीं करना चाहिए। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "विश्वनाथ ने सुना था कि एक बार उनकी माता पालकी में मायके से लौटी थीं, तो इन्हीं बुआ ने ननद के अधिकार से अपमानित कर, वापस उनके मायके भेज दिया था। पिता ने यह सब अपनी आँखों से देखा था। उनके सम्मुख उनकी निर्दोष पत्नी का अपमान और तिरस्कार हुआ था। उसे केवल इसलिए दंडित होना पड़ा था, क्योंकि उसके पालकी में बैठकर आने से उसकी ननद को ईर्ष्या हुई थी"।[24]..

16) सात्विकता :

ओली बुल आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में एक सात्विक पुरुष का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं। उनकी पत्नी सेरा ओली बुल एक अत्यंत ही पारखी नज़र वाली महिला है जो ओली बुल की सात्विकता और मानवीयता से सम्पन्न गुणों को एक ही नज़र में पहचान जाती है। उसकी जाँच सही थी। आज के समकालीन समाज को प्रगतिशीलता के मार्ग पर संचालित करने हेतु ओली बुल और उनकी पत्नी के समान मनुष्य की ज़रूरत है, लेकिन यहाँ बात यह है कि समाज में इस प्रकार के मानवों की संख्या बहुत कम है लेकिन अगर वे चाहें तो समाज की प्रगति कर सकते हैं। पिता जब सेरा से यह पुछते हैं कि वह ओली बुल को क्यों पसंद करती है ? तो वह जो उत्तर देती है वह विचारणीय है। लेखक लिखते हैं कि "मुझे उनकी सात्विकता मुग्ध करती है"।[25]..

17) विवाह आत्मा के सम्बंध के रूप में :

सेरा थार्फ का चित्रण लेखक नरेंद्र कोहली ने एक ऐसी युवती के रूप में किया है जो भारतीय और एक सनातन धर्म की नारी या हिंदू धर्म की नारी न होते हुए भी विवाह के लिए दो व्यक्तियों के बीच आत्मा के सम्बंध को महत्व देती है। सेरा के पिता की यह मान्यता थी कि कहीं न कहीं ओली बुल के मन में उसके पिता के धन के प्रति लोभ है लेकिन सेरा अपने पिता से कहती है कि "मैं समझती हूँ कि यह एक सूक्ष्म सम्बंध है। कदाचित दोनों की आत्माएँ..."[26].. आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में इस समाज में ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की संख्या कम ही है जो विवाह को एक आत्मिक सम्बंध के रूप में स्वीकार करते हैं। सेरा थार्फ का जो चरित्र है वह उन भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है जो दाम्पत्य-जीवन के सम्बंध को केवल दो दैहिक सम्बंध ही नहीं मानते बल्कि उसे दो आत्माओं का सम्बंध मानते हैं। उपन्यासकार नरेंद्र कोहली ने सेरा थार्फ का चित्रण एक ऐसी महिला के रूप में किया जो भले ही एक अमरीकी महिला है लेकिन चरित्र की दृष्टि से वह एक सच्ची भारतीय और हिंदू महिला का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत हो रही है। ओली बुल को अपने पति के रूप में चयन उसका एक यथार्थ चयन है।

18) संतों द्वारा संतों का अपमान :

आज मनुष्य एक ऐसे समय में जी रहा है जिस समय अध्यात्म के क्षेत्र से जुड़े हुए लोगों में ऐसे बहुत से लोग हैं जो अत्यंत ही दुष्ट प्रकृति के होते हैं और सच्चे साधकों या संतों को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संख्या प्रत्येक धर्मों में ही मौजूद होते हैं। इन्हीं लोगों के चलते आज के इस समकालीन समय में धर्म और अध्यात्म के प्रति आम लोगों की आस्था धूमिल पड़ती जा रही है। आलोच्य उपन्यास तोड़ो कारा तोड़ो के पंचम खंड में स्वामी विवेकानंद अमेरिका में श्रीमती थर्सबी के घर में जब पहुँचते हैं तो श्रीमती थर्सबी एक पादरी से उनका परिचय करवाती है तो पादरी का व्यवहार उनके प्रति शालीनता से युक्त नहीं होता है।वह स्वामीजी को उनके देश, समाज और संस्कृति को लेकर तरह-तरह से अपमानित करता है।स्वामीजी जैसे एक सन्यासी को देखकर उसके मन में भयंकर ईर्ष्या जाग उठती है। एक धर्म का संत दूसरे धर्म

के संत या आध्यात्मिक विद्वान को देखकर किस प्रकार से क्षणभर में अपने आचरण में परिवर्तन करता है इसका एक निदर्शन श्रीमती थर्सबी के घर में उपस्थित उस पादरी के चरित्र के माध्यम से लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने पाठकों को दर्शाने का प्रयास किया है।लेखक लिखते हैं कि "श्रीमरी थर्सबी ने अपने घर पर स्वामी से उस पादरी का परिचय कराया था और उसने अत्यंत शालीनता से मुस्कराते हुए हाथ मिलाया था। स्वामी क्या जानते थे कि अगले ही क्षण उसकी वह सारी शालीनता तिरोहित हो जाएगी; और उसका कोई और ही रूप होगा"।[27]..

आज ऐसे ही धार्मिक लोगों की संख्या अधिक है जो स्वयं को बड़े ही धार्मिक और ईश्वर भक्त बताते हैं लेकिन वास्तविकता कुछ और ही होती है। उनकी धार्मिकता समाज को दिखाने के लिए ही होती है।

19) साम्प्रदायिकता रूपी कारागार को तोड़ना :

लेखक ने अपने उपन्यास के पात्र फ़ैज़ अली एवं स्वामी विवेकानंद को एक ऐसे पात्रों के रूप में दर्शाया है जिन्होंने साम्प्रदायिकता रूपी कारागार को तोड़ दिया है या तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। लेखक नरेंद्र कोहली अपने पात्र स्वामी विवेकानंद से अपने पात्र फ़ैज़ अली को कहलवाते हैं कि "पिंजड़े को आपत्ति है कि वह कहता है कि क्या आप कभी भूल नहीं सकते कि आप मुसलमान हैं और मैं हिंदू हूँ"।[28]..

इस गद्यांश में वर्णित बातों के आधार यह कहा जा सकता है कि उपन्यास के पात्र स्वामी विवेकानंद पाठकों के समक्ष एक ऐसे व्यक्ति उभरकर आते हैं जिन्होंने अपने मन से साम्प्रदायिकता रूपी कारागार को तोड़ दिया है। ठीक इसी प्रकार लेखक ने पात्र फ़ैज़ अली को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में दर्शाया है जो इस कारागार को तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। लेखक लिखते हैं कि "फ़ैज़ अली प्रयतंपूर्वक गुफा में प्रवेश कर गए"।[29]..

लेखक फ़ैज़ अली से कहलवाते हैं कि "वर्षों का अभ्यास है छूटते-छूटते ही जाएगा"।[30]..

इन गद्यांशों में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपन्यास के पात्र स्वामी विवेकानंद एवं फ़ैज़ अली भले ही 19वीं शताब्दी के मानव है किंतु ये दोनों ही

आज के समकालीन परिप्रेक्ष्य में ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जिन्होंने साम्प्रदायिकता रूपी कारागार को तोड़ दिया है। इतना ही नहीं यदि किसी कारण उनके मन में थोड़ी भी साम्प्रदायिकता बची हो तो उसे भी उनके द्वारा तोड़ने का प्रयास जारी है क्योंकि उपन्यास में साम्प्रदायिकता को एक रोग की संज्ञा दी गई है। “इस रोग को जितनी जल्दी हो सके छोड़ दीजिए”।[31]..

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 251

2 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 2 साधना, पृष्ठ संख्या 11

3 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 2 साधना, पृष्ठ संख्या 17

4 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 2 साधना, पृष्ठ संख्या 27

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 2 साधना, पृष्ठ संख्या 28, 29

6 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 2 साधना, पृष्ठ संख्या 81

7 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 2 साधना, पृष्ठ संख्या 81, 82

8 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 53

9 डॉ कृष्ण बिहारी मिश्र, अराजक उल्लास नामक पुस्तक, पृष्ठ संख्या 37

10 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 171

11 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 173

12 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 173

13 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 188

14 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 2 निर्माण, पृष्ठ संख्या 334

[15] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 195

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 405

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 406

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 406

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 406

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 407

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 407

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 11

[23] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 11

[24] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 11

[25] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 8

[26] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 10

[27] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 91

[28] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 181

[29] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो, खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 181

[30] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 181

[31] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 181

iii. स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्वान्तरण

समाज का कोई भी महान व्यक्ति अचानक ही किसी महान लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता है। उसके पीछे उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसके व्यक्तित्व के निर्माण की भूमिका होती है। आलोच्य उपअध्याय में स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व निर्माण के पक्ष को लेकर बात की गई है। स्वयं लेखक नरेंद्र कोहली ने इस बात को स्वीकार किया है कि उनका जीवन विविधताओं से भरा हुआ था। लेखक कहते हैं कि "उनकी जीवनियों में तो यहाँ तक लिखा गया है कि दुनिया में ऐसी कोई चीज़ नहीं थी जिसमें कि उनकी रुचि न हो। वे गणित भी पढ़ते थे, फ़िज़िक्स भी पढ़ते थे"।[1]..

जोसोफीन ने एक बार स्वामी विवेकानंद से मज़ाक़ करते हुए पूछा कि इस संसार में क्या कोई ऐसी भी वस्तु है जिसके प्रति स्वामीजी के मन में कोई रुचि न हो। स्वामीजी की मान्यता थी मनुष्य का मस्तिष्क ब्रह्म का मस्तिष्क है और गणित भी ब्रह्म का है। स्वामीजी के जीवन की विविधता की बात की जाए तो उनका जीवन विविधताओं से भरा हुआ है। वे संगीतकार भी हैं, सन्यासी भी हैं, लेखक की मान्यता है कि वे योद्धा भी हैं। योद्धा कहने से लेखक का तात्पर्य है कि स्वामी मुक्केवाज भी हैं और निशानेवाज भी हैं। उपन्यासकार ने स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधारित उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' के पहले खंड में जिसका शीर्षक 'निर्माण' है उसमें स्वामीजी के व्यक्तित्व निर्माण के विविध आयामों को दर्शाया है।

जिस समय स्वामी विवेकानंद का जन्म हुआ उनके विविध व्यक्तित्व की जानकारी उनके पिताजी की बुआ (दादी) को हो जाती है। तभी तो वह कहती हैं कि "उसका कंठ फूटा तो कैसा प्रबल चीत्कार किया उसने। नवजात शिशु की वाणी में इतनी शक्ति। मैं तो चमत्कृत रह गई, विश्वनाथ ! बड़ा होगा तो जाने उसकी वाणी क्या करेगी" ?[2]..

स्वामी विवेकानंद के पिता विश्वनाथ दत्त की बुआ को कहीं न कहीं शिशु नरेंद्र के बहुआयामी व्यक्तित्व का एक अस्पष्ट आभास हो चुका था क्योंकि आगे चलकर विवेकानंद ने एक सन्यासी, सुवक्ता, संगीतज्ञ आदि बनकर अपने दिव्य ज्ञान से सम्पूर्ण विश्व को हिलाकर रख दिया था। शुरू से ही उनके व्यक्तित्व में सन्यास जीवन के प्रति एक आकर्षण

देखने को मिलता है। लेखक नरेंद्र कोहली उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' के प्रथम खंड 'निर्माण में दिखाते हैं कि बालक नरेंद्र के उदंडीपन को शांत करने के लिए तरह-तरह के उपाय किए गए। उसे लुभाने का प्रयास किया गया। उससे कहा गया कि उसे मिठाई, खिलौना आदि दी जाएगी। माँ का कहना था कि वह उसे अधिक प्यार करेगी और छोटी बहन किरण को गोद में नहीं लेगी। परंतु बालक नरेंद्रनाथ को विचलित नहीं किया जा सकता था। उन्हें किसी बंधन में नहीं बंधा जा सकता था।लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "ला छुरी दे दे। मैं तुझे ढेर सारा प्यार दूँगी। छोटी किरण को गोद में नहीं लूँगी तुझे लूँगी"।[3].. किंतु बालक नरेंद्र पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं हुआ। अपनी माँ की बातों को सुनकर बालक नरेंद्र ने जो कुछ कहा वह इस प्रकार है "नहीं चाहिए है प्यार। तुम्हारा प्यार मुझे पकड़ने का एक बहाना है"।[4]..

स्वामी विवेकानंद स्वतंत्र व्यक्तित्व के धनी थे। सांसारिक बंधन के प्रति उनके बाल मन में आकर्षणहीनता की भावना थी। वे किसी भी प्रकार के सांसारिक बंधन में बंधने हेतु इस संसार में नहीं आए थे। इस बात का आभास कहीं न कहीं उनकी माँ भुवनेश्वरी देवी को हो चुका था। वे अपने पुत्र की बातों को सुनकर जो सोचती हैं उसे लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "भुवनेश्वरी का हृदय धक से रह गया : यह तो अभी से सन्यासियों की भाषा बोल रहा है। प्रेम के बंधन में बाँधकर रखने को प्रलोभन मानता है। मुक्त होने के लिए वह प्रेम को ठुकरा देगा ?[5].. बचपन में अपनी माँ के निकट, कभी-कभी नानी के निकट इतना ही नहीं कभी-कभी अपनी नानी की माँ राईमणि के निकट सुनी गई आध्यात्मिक कहानियों के द्वारा उनका व्यक्तित्वान्तरण ईश्वर और अध्यात्म के प्रति होता चला गया।

नरेंद्रनाथ के मन में अविवाहित रहने का निर्णय उनके अनोखे व्यक्तित्व का परिणाम है। इस व्यक्तित्व के निर्माण में साईस के बातों की भूमिका भी है। साईस से ही नरेंद्र को यह ज्ञात होता है कि विवाह एक बहुत ही बुरी चीज है। इससे संसार का कोई भी पुरुष सुखी नहीं हो पाता है। जहाँ तक स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व में शिव की भक्ति की बात है इसमें उनकी माता भुवनेश्वरी देवी की भूमिका है। साईस जब विवाह के दुष्परिणामों का

वर्णन करता है तो वे दुखी होकर जब माँ के पास जाते हैं तो उनकी माँ कहती है कि "तू उनकी आराधना कर पुत्र ! जो कभी सांसारिक नहीं हुए।विवाह करके भी नहीं। पत्नी के रहते हुए भी तपस्या ही करते रहे। जो गृहस्थ होकर भी कभी घर में नहीं रहे"।[6]..

लेखक नरेंद्र कोहली ने उनके व्यक्तित्व के विविध आयामों को दर्शाया है। नरेंद्रनाथ एक अच्छे और दक्ष अभिनेता भी थे। अपने बचपन में मित्रों के साथ खेलते हुए भी वे अभिनय किया करते थे। एक बार उन्होंने खेलते हुए एक सुशासक का अभिनय करते हुए अपने मित्रों को यह समझाने का प्रयास किया कि एक शासक को किस प्रकार एक प्रजा वत्सल और न्याय प्रिय शासक होना चाहिए। स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व का विकास केवल एक अभिनेता के रूप में नहीं बल्कि एक सुगायक के रूप में भी हुआ था। न केवल गायन की कला में बल्कि वाद्य यंत्रों को सुचारू रूप से बजाने के क्षेत्र में भी उनके व्यक्तित्व का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। इनकी संगीत प्रतिभा का एक उदाहरण इस प्रकार है। शुरू में वे जिस समय परिव्राजक थे तथा भारत भ्रमण करने हेतु निकले थे और घूमते हुए सन 1890 ईसवीं में बिहार के भागलपुर में एक बंगाली सज्जन मन्मथनाथ चौधरी के घर में पहुँचे थे तो वहाँ अगली संध्या में संगीत का आयोजन किया गया। मन्मथ बाबू ने भागलपुर शहर के संगीत के धनी सभी को बुलाया था।

गायन शुरू हुआ और कैलाश बाबू तबले पर संगत करने बैठे। स्वामीजी ने पहले सरस्वती वंदना गाया। शिव स्तोत्र गाया। उपनिषदों के अंश सुनाए इतना ही नहीं, मीराबाई, तुलसीदास और सूरदास के भजनों को भी प्रस्तुत किया कुछ बंगला के भक्ति गीतों को भी प्रस्तुत किया। अपने गुरु ठाकुर श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रिय भजनों को सुनाया जो जगन्माता से सम्बंधित थे। संगीत सुनते हुए बहुत समय बीत चुका था। संगीत की भक्ति धारा अपने प्रवाह में भक्तजनों को इस प्रकार बहा ले गई कि लोगों को पता ही नहीं चला कि आठ घंटे हो गए हैं। अचानक स्वामीजी ने देखा कि कैलाश बाबू अब और तबले पर संगत नहीं कर पाएँगे। उन्हें बहुत कष्ट हो रहा है। अतः स्वामीजी ने अपना गायन रोक दिया। स्वामीजी के गायन रोकने के बाद जैसे लोगों का सन्मोहन टूटा। उनका कहना था कि अचानक संगीत को क्यों रोक दिया गया है ? स्वामीजी का कहना था कि कैलाश

बाबू अब और तबले संगत नहीं कर सकते। स्वामीजी की बात सुनकर मन्मथनाथ चौधरी ने घड़ी देखी तो पता चला कि अब तो प्रातः के तीन बज रहे हैं। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। स्वामीजी ने निरंतर आठ घंटे संगीत की प्रस्तुति की थी। उनके संगीत में ऐसा सन्मोहन था कि वहाँ उपस्थित कोई व्यक्ति ऊबा नहीं था। यहाँ तक कि किसी व्यक्ति को भूख-प्यास तक का अनुभव भी नहीं हुआ। वे अपनी मित्र मंडली के बीच भी कभी-कभी अपने संगीत की प्रस्तुति किया करते थे। नरेंद्रनाथ एक अच्छे निशानेबाज़ और मुक्केबाज़ भी थे, साथ ही लाठी या दंड संचालन में भी उन्हें काफ़ी महारथ हासिल थी। वे इस खेल में भी काफ़ी दक्ष थे। नवगोपाल मित्र के अखाड़े में इस लाठी खेल की प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। जिसमें बालक नरेंद्र ने काफ़ी दक्षता का परिचय दिया और विधिपूर्वक जीत हासिल की।

अपने विद्यालयी जीवन में इनके व्यक्तित्व में देश की भाषा, मातृभाषा और अपने धर्म की भाषा के प्रति श्रद्धा की भावना जाग उठी थी। जब वे पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर के मेट्रोपलिटन इन्स्टिट्यूशन में पढ़ रहे थे तब अंग्रेज़ी भाषा पढ़ने के लिए अध्यापक द्वारा उनके चयन की घोषणा की गई। उन्होंने जब यह सुना तो विरोध करना शुरू कर दिया और उन्होंने अपने अध्यापक से कहा कि "गुरु महाशय ! यदि आप अन्यथा न मानें तो क्या मैं पूछ सकता हूँ कि हमें एक विदेशी भाषा क्यों पढ़नी चाहिए ?" वे इस पढ़ाई के औचित्य के बारे में जानना चाहते थे। अध्यापक की मान्यता थी कि अंग्रेज़ी ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। इस अंग्रेजी के पठन-पाठन की बात सुनकर उन्हें ऐसा लग रहा था कि मानो कोई उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ रहा था और वे उससे मुक्त होने का प्रयास कर रहे हैं।लेखक लिखते हैं कि "नरेंद्र को लगा कि वह फट पड़ेगा। किंतु वह यह भी नहीं जानता था कि वह मात्र एक विद्यार्थी है। नरेंद्र को अपनी असहायता का ऐसा बोध पहले कभी नहीं हुआ था। उसकी आँखों में आँसू छलक आए"।[7]..

स्वामीजी के व्यक्तित्व के बारे में लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व का आकर्षण .....आकर्षण नहीं जादू ..... जादू जो सर चढ़कर बोलता है। कोई भी संवेदनशील व्यक्ति उनके निकट जाकर सम्मोहित हुए बिना नहीं रह

सकता। उन्हें किसी एक युग, प्रदेश, सम्प्रदाय अथवा संगठन के साथ बाँध देना अज्ञान भी है और अन्याय भी"।[8]..

न केवल आम आदमी बल्कि बड़े-बड़े राजा भी इनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए हैं। राजा अजितसिंह जो खेतड़ी प्रदेश के राजा हैं वे तो उनके दैविक व्यक्तित्व से इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें अपना गुरु मान लिया वे उनके शिष्य तुल्य हो गए। भारत भ्रमण करते हुए वे जब महाराष्ट्र पहुँचते हैं तब उनकी भेंट हरिपद मित्र नामक एक व्यक्ति से होती है जो शुरू में सामान्य सन्यासी मानकर उनकी उपेक्षा करता है। वह स्वामीजी को एक पाखण्डी साधु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मानता है। हरिपद मित्र के विचार को प्रस्तुत करते हुए लेखक लिखते हैं कि "हरिपद का माथा ठनका सारे पाखण्डी ही तो गेरुआ धारण कर इधर-उधर घूम रहे हैं"।[9].. अर्थात् पहली बार जब स्वामीजी से भेंट हुई तब उसके मन में अपने बड़प्पन का तथा पढ़े-लिखे होने का गर्व था। उसमें अज्ञानता समाहित थी। हरिपद के मन में जाति अहंकार भी था। इसलिए वह कहता है कि "पर मैं पहले ही बता देता हूँ कि मैं कायस्थ हूँ और मेरे घर में एक ही हुक्का है। यदि आपको आपत्ति न हो थोड़ा सा तम्बाकू मंगवाऊँ"।[10].. कालांतर में स्वामीजी से वार्तालाप करते हुए वह स्वामीजी के आध्यात्मिक ज्ञान से इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि वह अपनी पत्नी के साथ स्वामीजी से दीक्षा भी ले लेता है।

जब वे अमेरिका के शिकागो में गए थे और जब यूनानी भाषा के प्राध्यापक डॉक्टर जान हेनरी राईट से इनका परिचय हुआ था। जब उनसे स्वामीजी ने इस बात की चर्चा की कि विश्वधर्म- सम्मेलन में भाग लेने हेतु वहाँ के लोग उनसे परिचय पत्र की माँग कर रहे हैं। तब अपने वार्तालाप के दौरान राईट महोदय ने उनकी दैविक प्रतिभा को पहचानते हुए और प्रभावित होते हुए कहा था कि उनके जैसे विद्वान व्यक्तित्व से परिचय पत्र की माँग करना और इस संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य से उसके किरणों में जो संसार को प्रकाशित करने की शक्ति है उसका प्रमाण माँगना एक ही बात है। अर्थात् जिस प्रकार से सूर्य से उसकी आलोक शक्ति के लिए कोई प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं है सूर्य तो स्वयं की शक्ति के माध्यम से प्रकाशित होता है। ठीक इसी प्रकार स्वामी विवेकानंद जैसे दिव्य

प्रतिभामान व्यक्ति के लिए अलग से कोई प्रमाणपत्र की आवश्यकता नही। स्वामीजी प्रत्यक्षीकरण को महत्व देते थे। उपन्यास के पहले खंड में ही वर्णन है कि उनके एक मित्र के दादा ने भय दिखाकर उन्हें चंपक के वृक्ष से झुलने के लिए मना किया। परंतु मन ही मन उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया और अंत में अपने मित्र को बताया कि मनुष्य को केवल किसी के कहने से किसी बात को प्रमाण के बिना विश्वास नहीं करना चाहिए। लेखक कहते हैं कि "पहली बात तो यह है कि जो प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं होता उसे वे सत्य नहीं मानते"।[11]..

नरेंद्रनाथ एक सुवक्ता भी थे इसका पहला आभास एक बार विद्यालय के पारितोषिक वितरण समारोह में ही हो चुका था। उस दिन उनके विद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक बसु महाशय सेवा निवृत्त होने वाले थे। और उनके विषय में कुछ कहा जाना था। भाषण के तैयारी की ज़िम्मेदारी स्वयं नरेंद्रनाथ पर थी। उनका कहना था कि अपने गुरु की प्रशंसा में अगर छात्र को कुछ बोलना ही है तो इसमें तैयारी की कोई आवश्यकता नहीं है। मित्रों को काफ़ी चिंता होने लगी। पता चला कि प्रख्यात विद्वान सुरेंद्रनाथ बनर्जी आए हुए हैं और वे पंडित इश्वरचंद्र विद्यासागर के पास बैठे हुए हैं। लेखक लिखते हैं कि "नरेंद्र आकर मंच पर खड़ा हुआ और उसने गुरुजनों की ओर देखकर हाथ जोड़ प्रणाम किया और अपनी आँखें बंद कर ली जैसे अपने विचारों को संचित कर रहा हो"।[12].. बालक नरेंद्र का कहना था कि भले ही आज एक शिक्षक को विदाई दी जा रही है। यह सत्य है क्योंकि वे उम्रदराज़ होने के कारण सेवानिवृत हो रहे हैं।व्यवहारिक दृष्टि से वास्तव में हमारे द्वारा उनके विदायी समारोह का आयोजन किया गया है। शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। अतः एक शिक्षक कभी भी शिक्षण कार्य से अवकाश ग्रहण नहीं कर सकता। अगर कोई अध्यापक अवकाश ग्रहण करने के बाद भी शिक्षण कार्य का त्याग कर देता है तो यह समझ सकते हैं कि उसने अवकाश ग्रहण किया है अन्यथा नहीं।शिक्षक उस जल धारा के समान है जो नदी के दोनों किनारों को सींचे बिना आगे नहीं बढ़ पाती है।

बसु महाशय को ऐसा अनुभव हो रहा था आज तक उनके शिष्य ने उन्हें इतनी श्रद्धा और भक्ति से आपुरित होकर प्रणाम नहीं किया है। वे नरेंद्र की बातों से अत्यंत भावुक हो

उठे। लेखक नरेंद्र कोहली ने लिखा है कि "बसु महाशय अत्यंत विह्वल स्थिति में अपने स्थान पर निष्क्रिय बैठे रह गए। आशीर्वाद देने के लिए उनका हाथ तक नहीं उठा, किंतु उनका रोम-रोम जैसे यह स्वीकार कर रहा था कि आज तक उनके किसी शिष्य ने उन्हें इस प्रकार नहीं किया था"।[13]..

प्रख्यात विद्वान सुरेंद्रनाथ बंदोपाध्याय ने नरेंद्र की प्रशंसा में कहा कि "मैं भी उस गुरु और उस संस्था को प्रणाम करता हूँ जिसने नरेंद्रनाथ दत्त जैसे शिष्यों का निर्माण किया है। मुझे विश्वास है कि आज का यह किशोर आगे चलकर अत्यंत प्रभावशाली वक़्ता बनेगा। और जब वह बोलेगा तो दुनिया न केवल सुनेगी वरन उसे देखती भी रह जाएगी"।[14]..

विवेकानंद के व्यक्तित्व में नारी के प्रति मातृभाव की जागृति या मातृ भाव का निर्माण भी हो चुका था यह कुसुमलता के प्रति आचरण से ही पता चलता है। कुसुमलता एक विधवा थी और वह नवयुवक नरेंद्र के प्रति बहुत आकर्षित हो चुकी थी। युवक नरेंद्र उस समय किराए के मकान में रह कर पढ़ाई-लिखाई किया करता था। उसी घर के निकट में कुसुमलता नामक एक ब्राह्मण बाल विधवा रहा करती थी। वह नरेंद्र के प्रति शारीरिक आकर्षण का अनुभव कर रही थी और एक दिन रात्रि का प्रथम प्रहर बीत रहा था। ठीक उसी समय वह नरेंद्र के प्रति आकर्षित होकर उसके पास पहुँच गई। नरेंद्र जब उस किशोरी को देखता है तो वह बिल्कुल ही विचलित नहीं होता है। वह उसे माँ सम्बोधन करता है और यह जानना चाहता है कि वह उस किशोरी की क्या सेवा कर सकता है। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "नरेंद्र का ध्यान उचटा। उसने दृष्टि उठाकर देखा और चकित रह गया बीच द्वार पर एक किशोरी खड़ी थी। वह उसे नहीं पहचानता था। वह उठने के प्रयत्न में घुटनों के बल बैठ गया। कुछ निमिष तक समझ नहीं पाया। उसकी ओर देखता रहा। किंतु किशोरी के चेहरे पर अपने लिए मुग्धता का भाव देखकर उसे स्थिति का कुछ-कुछ आभास हो गया। उसके हाथ जुड़ गए, मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ माँ ! बोलो। रात को इस समय आई हो। कोई कष्ट ही होगा"।[15]..

स्वामीजी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन एक ऐतिहासिक के रूप में भी किया जा सकता है। स्वामीजी जिस क्षेत्र में जाया करते थे वहाँ के इतिहास में भी बहुत ही गहरी रुचि लिया

करते थे। जब वे पेरिस गए तो वहाँ के इतिहास का भी उन्होंने बड़ी गहराई से अवलोकन करने का प्रयास किया था। उन्होंने वहाँ संग्रहालय, कैथेड्रेल और चर्च का भी बड़े ही चाव के साथ दर्शन किया। स्वामीजी जब मिश्र में गए तो पिरामिडों के बारे में, उनके इतिहास के बारे में, इतना ही नहीं उनके ऐतिहासिक महत्व के सम्बंध में जितनी अधिक जानकारी स्वामीजी को ज्ञात था उतनी जानकारी उस समय के बड़े से बड़े इतिहासकारों को भी नहीं थी।

यहाँ एक दृष्टांत के माध्यम से लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद को सत्य के मार्ग पर अडिग रहने वाले व्यक्ति के रूप में भी दिखाया है। एक बार उनके भूगोल के अध्यापक बच्चों की कॉपियाँ जाँच रहे थे। उन्होंने दो-तीन कॉपियाँ ही जाँची थीं कि उन्हें बालक नरेंद्र की कॉपी दिखाई पड़ी। उन्होंने उस कॉपी पर लिखे गए उत्तर को पढ़ते हुए नरेंद्र को खड़ा किया और उससे यह जानना चाहा कि यह कॉपी क्या उसकी थी ? नरेंद्र का कहना था कि यह कॉपी उसकी ही थी और यह उत्तर भी उसने ही लिखा है। नरेंद्र की बात सुनकर अध्यापक महोदय क्रोधित हो गए। उन्होंने नरेंद्र पर इस उत्तर को लिखने के लिए प्रहार भी किया था। फिर भी बालक नरेंद्र सत्य के मार्ग पर अटल बना रहा। अंत में अध्यापक को नरेंद्र की दृढ़ता के कारण अपनी ग़लती का अनुभव हुआ था। उन्होंने अपनी ग़लती स्वीकार भी की थी। लेखक लिखते हैं कि "भूगोल के अध्यापक छात्रों की कॉपियाँ जाँच रहे थे। उन्होंने दो-तीन कॉपियाँ ही जाँची थी कि नरेंद्र की कॉपी उनके सामने आ गई। उन्होंने उसे कुछ लपककर पढ़ा और मुस्करा पड़े"।[16].. अध्यापक ने जब नरेंद्र से यह जानना चाहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी कहाँ है ? तो बालक नरेंद्र को बड़ा आश्चर्य हुआ कि अध्यापक महोदय इस प्रश्न को क्यों पूछ रहे हैं। इसी प्रश्न का उत्तर तो उन्होंने लिखने के लिए दिया था और नरेंद्र ने इसका उत्तर लिखा भी था और यह उत्तर सही भी था तो फिर इसमें पूछने की क्या आवश्यकता थी ? फिर अध्यापक महोदय ने जब पूछा ही था तो उत्तर तो देना ही था। उसने कहा कि इस देश की राजधानी वाशिंगटन है। अध्यापक इस उत्तर को सुनकर क्रोधित हो गए। अध्यापक की मान्यता थी कि किसी को प्रश्न का उत्तर नहीं भी सूझ सकता है। अगर किसी को किसी विषय की जानकारी नहीं है

तो उसे अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए किसी जानकार व्यक्ति की सहायता लेनी चाहिए या पुस्तक की सहायता लेनी चाहिए। इस प्रकार ग़लत उत्तर का सहारा नहीं लेना चाहिए। लेखक ने लिखा है कि "अचानक ही अध्यापक के चेहरे से मुस्कान विलीन हो गई। उनकी आकृति पर रोष के लक्षण उभरे। डपटकर बोले तुम्हें लज्जा नहीं आती ! कक्षा में किसी छात्र को किसी प्रश्न का उत्तर न सूझे – यह तो मेरी समझ में आता है, किंतु घर से करके लाए गए काम में भी भूल हो, यह तो अक्षम्य है। तुम्हें स्वयं नहीं आता था तो घर में किसी से पूछ लेते। पुस्तक देख लेते"[17]..

अध्यापक के इस प्रकार के आचरण को बालक नरेंद्र समझ नहीं पा रहा था। उसे यह समझ में ही नहीं आ रहा था कि उसकी ग़लती क्या है ? उसने अध्यापक से पूछा कि "गुरु महाशय ! पहले मेरी भूल तो बताएँ"। उसकी बातों को सुनकर अध्यापक के क्रोध की सीमा नहीं रही। अध्यापक का कहना था कि एक तो वह ग़लती कर रहा था वहीं दूसरी ओर यह बालक उदंड बनता चला जा रहा है। अध्यापक का कहना था कि संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी न्यूयार्क है। नरेंद्र को इस बात पर आश्चर्य था कि यह उत्तर तो सही था। परंतु पता नहीं ऐसी क्या बात है कि अध्यापक उसे ग़लत बता रहे हैं। उसने अध्यापक से कहा कि "नहीं, गुरु महाशय, यह गलत है। संयुक्त राज्य अमरीका की राजधानी वाशिंगटन ही है"।[18]..

अध्यापक क्रोध से आग बबूला हो गए। उनकी मान्यता थी कि नरेंद्र को अहंकारी नहीं होना चाहिए। एक छात्र के नाते उसे अपनी ग़लती स्वीकार करनी चाहिए। उसे भद्र आचरण सीखना चाहिए। लेखक लिखते हैं कि "अध्यापक क्रोध से भभक उठे, इतना दुस्साहस ! एक तो उत्तर लिखने में भूल की उस पर बता रहा हूँ, तो मानता नहीं। आगे से अकड़ता है। अहंकार की कोई सीमा होती है। गुरुओं के सम्मुख इस प्रकार बोलना चाहिए क्या ? नम्रता सीखो, अपनी भूलों को स्वीकार करो और ज्ञान का विस्तार करो। अमेरिका की राजधानी न्यूयार्क है"।[19]..

अध्यापक की असत्य बात का नरेंद्र ने समर्थन नहीं किया क्योंकि वह इस बात को जान रहा था कि वह सत्य के मार्ग पर चल रहा है। उसने जिस उत्तर को उत्तर पुस्तिका में लिपिबद्ध किया है वहीं सत्य है। अतः वह अपनी बात पर अडिग बना रहता है और उससे विचलित नहीं होता है। जो सत्य है, शाश्वत है वह तो सदा एक ही बना रहेगा। उसमें किसी भी व्यक्ति के कहने मात्र से कोई परिवर्तन नहीं होगा। अतः किसी के बहकाबे में आकर शाश्वत सत्य को कभी भी अस्वीकार नहीं करना चाहिए। कदाचित यहीं कारण है कि बालक नरेंद्र कहता है कि "गुरु महाशय ! आपके उपदेश के अनुसार यदि मैं आपके उपदेश के सम्मुख नतमस्तक हो भी जाऊँ, तो भी संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी तो वाशिंगटन में ही रहेगी, वह न्यूयार्क में स्थानांतरित कभी नहीं होगी"।[20]..

नरेंद्र की इस प्रकार की बात सुनकर उन्होंने उसे भयंकर रूप से पिटना शुरू कर दिया। लेकिन फिर भी बालक नरेंद्र सत्य से विचलित नहीं हुआ उसने अत्याचार के भय से असत्य से समझोता नहीं किया और अपनी बात पर अडिग बना रहा। वह सत्य के मार्ग पर निर्भीक रूप से बना रहा। अंत में अध्यापक को अपनी ग़लती का बोध हुआ और उन्होंने पुस्तक भी देखी थी। ऐसा सम्भव इसलिए हो सका क्योंकि स्वामीजी सत्य पर अविचलित थे। उन्हें पश्यताप भी हुआ कि अपनी अज्ञानता के कारण वे ही भूल कर रहे थे। अंत में उन्होंने नरेंद्र से कहा था कि "मुझे प्रसन्नता है कि तुमको अपनी बात पर इतना विश्वास था। इसलिए तुम सत्य पर अड़े रहे। तुम इतने दृढ़ न होते तो मुझे अपनी भूल का ज्ञान कभी न होता। मैं संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी न्यूयार्क ही मानता रहता ; और बच्चों को भी वहीं पढ़ता"।[21]..

इस प्रकार यहाँ स्वामीजी को किसी भी परिस्थिति में सत्य पर अडिग रहने वाले व्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है। अंत में विद्यालय से लौटकर जब वे घर पहुँचते हैं और अपनी माँ को विद्यालय में घटी हुई सम्पूर्ण घटना के बारे में जानकारी देते हैं तो इनकी माता अत्यंत प्रसन्न होती हैं और वे अपने पुत्र से जो कुछ कहती हैं उसका वर्णन लेखक ने इन शब्दों में किया है। "तूने अच्छा किया पुत्र ! कि सत्य पर अडिग रहा। भुवनेश्वरी ने उसके

सिर पर हाथ फेरा, सत्य पर अडिग रहना, बड़े साहस का कार्य है। हमें अपना साहस नहीं छोड़ना चाहिए"।[22]..

लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्वांतरण केवल सत्य के मार्ग पर अडिग रहने वाले व्यक्ति के रूप में ही नहीं किया है बल्कि उन्होंने उनके व्यक्तित्व का रूपांतरण अन्याय का विरोध करने वाले व्यक्तित्व के रूप में भी किया है। स्वामीजी के समय में भारत में अंग्रेज़ों का शासन था। और अंग्रेज़ तरह-तरह से भारत की संस्कृति को, समाज को अपमानित किया करते थे और अपने को श्रेष्ठ घोषित किया करते थे। सड़कों पर लोगों की भीड़ एकत्रित कर अपमानित किया करते थे। इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख लेखक नरेंद्र ने अपने उपन्यास तोड़ो कारा तोड़ो के प्रथम खंड में किया है जिसका विरोध स्वामीजी करते हैं। घटना इस प्रकार है एक बार हेडो तालाब के निकट बहुत भीड़ थी। वहाँ पर एक ईसाई पादरी लोगों की भीड़ से अपने धर्म की प्रशंसा और हिंदू धर्म की निंदा करते हुए कह रहा था कि ईसाइयों के ईश्वर ने इस संसार का निर्माण किया है। प्रकृति की समस्त वस्तुओं का निर्माण जैसे सूर्य, चाँद, सितारे आदि का उनके ईश्वर ने किया है और हिंदुओं के ईश्वर का निर्माण कुम्भकार ने अपने गंदे हाथों से किया है। कुम्हार हिंदुओं की मूर्तियों का निर्माण करता है और हिंदू लोग उसे ईश्वर मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं। कुम्भकार पैरों से रौधकर मूर्ति बनाता है। उस स्थान से जाते हुए बालक नरेंद्र ने यह सब देखा तो वह कुछ न बोलकर वहाँ से चला जाना चाहता था परंतु वह जा नहीं पाया। उसे रुकना ही पड़ा। पादरी बहुत सारी बुराइयों की चर्चा कर रहा था। वह कह रहा था हिंदू लोग अपनी पत्नियों को जीवित जला दिया करते हैं। ऐसा भी होता है कि वह व्यक्ति अगर नहीं भी जलाता है तो उसकी मृत्यु के बाद उसके अपने ही परिवार वाले उसकी पत्नी को सती बनाने के लिए जला दिया करते हैं। यह तो कोई धर्म ही नहीं है।

पादरी की इस प्रकार की बातों को सुनकर नरेंद्र के मन में अत्यंत पीड़ा की अनुभूति हो रही थी।पादरी का क्रियाकलाप उसे अक्षम्य प्रतीत हो रहा था साथ ही साथ उन लोगों के प्रति भी उसके मन में वितृष्णा की भावना जाग रही थी जो समवेत होकर अपने ही धर्म की निंदा एक विधर्मी से सुनते चले जा रहे थे। यह सब देखकर नरेंद्र के मन में उस पादरी के प्रति विरोध और अपने देश के प्रति श्रद्धा और सहानुभूति की भावना जाग उठी थी।

लेखक लिखते हैं कि "नरेंद्र भीड़ को चीरकर उस पादरी के सामने आ खड़ा हुआ। क्या प्रत्येक हिंदू अपनी पत्नी को जला देता है ? उसने कठोर स्वर में पूछा। हाँ जला देता है। पादरी ने उदंडता से कहा और उसकी ओर उपेक्षा से ऐसे देखा जैसे कि वह मनुष्य न होकर कोई निकृष्ट कीड़ा हो। तो फिर इतनी सारी सुहागनें जीवित कैसे हैं ? नरेंद्र ने उसे डाँटा, और यदि सारी विधवाओं को जला दिया जाता तो प्रत्येक मंदिर में इतनी सारी विधवाओं की भीड़ कहाँ से आ जाती है ? नरेंद्र बिना रुके ही कहता चला गया और कुछ मूर्खों के दुष्कर्मों के कारण तुम सारे हिंदू धर्म को कलंकित नहीं कर सकते। नरेंद्र का चेहरा क्रोध से तमतमा गया था। उसकी इच्छा हो रही थी कि अभी इस पादरी को गर्दन से पकड़कर भूमि पर दे पटके, किंतु उसका विवेक जैसे उसकी बाँह पकड़े हुए था, तुम समाज की कुप्रथाओं को धर्म पर आरोपित कर धर्म को कलंकित कर रहे हो। अंग्रेज़ों को शराब पीते देखकर हमने तो कभी नहीं कहा है कि ईसा ने मदिरा-सेवन का समर्थन किया है ... या सारे ईसाई शराबी होते हैं। अपने कृत्यों से तुम हमारे समाज के दोषों को तुम हमारे धर्म के दोष बता रहे हो। अपने भिन्न दृष्टिकोण के कारण सत्य को देख नहीं रहे हो। पति द्वारा जीवित पत्नी को जलाने का तो एक भी उदाहरण नहीं है। हमारे ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ पति की मृत्यु के पश्चात भी किसी पत्नी ने चितारोहण नहीं किया। कुंती और कौशल्या जैसी नारियाँ भी पति की मृत्यु के बाद जीवित रहीं। सती वह नहीं जो पति के साथ चितारोहण करती है। जहाँ तक मूर्ति पूजा को लेकर पादरी के द्वारा लोगों को अपमानित करने की बात है इस पर नरेंद्र का कहना था कि हिंदुओं को मूर्तिपूजक बताकर ईसाइयों के द्वारा इतना अपमान किया जाता है लेकिन वे यह भूल गए हैं कि वे भी कहीं न कहीं मूर्तिपूजक ही तो हैं वे भी तो ईसा मसीह की मूर्ति की पूजा करते हैं। क्रास जैसे प्रतीक के प्रति अपनी श्रद्धा ज्ञापित करते हैं। इतना ही नहीं ईसा की मूर्ति के समक्ष अपनी मस्तक भी तो झुकाया करते हैं साथ ही साथ चर्चों में तो ईसा की माता मरियम की भी मूर्ति हुआ करती है। इस प्रकार देखते हैं अपने देश, धर्म के सम्मान की रक्षा के लिए एक विधर्मी के प्रति बालक नरेंद्र ने अपना विरोध प्रदर्शित किया।

लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामीजी के व्यक्तित्व को एक सहायक के रूप में भी को दर्शाया है। मित्रों या दूसरे व्यक्तियों के प्रति स्वामीजी का व्यक्तित्व काफ़ी सहायक रहा है। एक बार वे अपने मित्रों के साथ कलकत्ता का दुर्ग देखने जा रहे थे। तभी उनका एक मित्र सूर्यकांति बीमार पड़ जाता है। तो वे दुर्ग देखने हेतु जाने का विचार छोड़कर मित्र की सहायता करने का निश्चय करते हैं। क्योंकि दुर्ग तो किसी दूसरे दिन भी देखने के लिए जाया जा सकता है परंतु उनका मित्र सूर्यकांति जो दुर्ग देखने के लिए जाते हुए मार्ग में ही ज्वर ग्रस्त हो गया है उसे तो आज ही सहायता की आवश्यकता है। स्वामीजी के मन में बचपन में जो मित्र वत्सलता या मित्रों के प्रति जो एक सहायक दृष्टि थी उसका पता इस बात से ही चलता है जो वे सूर्यकांति से कहते हैं "मेरा दुर्ग देखना इतना आवश्यक नहीं है, जितना कि तुम्हारा देखभाल करना। दुर्ग वहीं रहेगा, मैं फिर किसी दिन जाकर उसे देख आऊँगा। यदि मैं तुम्हें इस अवस्था में छोड़कर दुर्ग देखने चला गया, तो मेरा मन मुझे दोषी ही नहीं पापी मानने लगेगा"।[23]..

अपनी युवावस्था में जिस समय सुरेंद्रनाथ मित्र के घर में और दक्षिणेश्वर में उनकी भेंट ठाकुर से हुई थी तो उस समय इन पर ब्राह्मसमाज का प्रभाव था और उस समाज से वे जुड़े हुए थे। एक घटना से स्वामीजी के व्यक्तित्व में असीम गुरु भक्ति की भावना का परिचय मिलता है। ठाकुर रामकृष्ण गले के कैंसर से पीड़ित थे और डॉक्टर महेंद्रलाल सरकार ने इसे छूत की बीमारी की संज्ञा दी थी हालाँकि यह अलग बात है कि कैंसर छूत की बीमारी नहीं है। एक रोज़ ऐसा हो गया कि सारे गुरुभ्राता बड़े ही उद्विग्न होकर स्वामीजी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वामीजी अपने घर गए हुए थे। वे जब अपने घर से काशीपुर की उद्यान बाटी में लौट आए तो अपने सारे गुरुभाइयों को बड़ी ही चिंतित मुद्रा में देखा तो उन्होंने उन सब से जब यह पूछा कि वे सब इतने चिंतित क्यों दिखाई दे रहे हैं ? तो उन लोगों ने कहा कि डॉक्टर ने कहा है कि ठाकुर को कैंसर हुआ है और अब इनकी सेवा सोच-समझकर की जानी चाहिए। यह छूत की बीमारी है। यह अन्य लोगों भी लग सकता है। स्वामीजी को इस बात की जानकारी थी कि कैंसर छूत की बीमारी नहीं है। स्वामीजी को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि डॉक्टर महेंद्रलाल सरकार ने एक चिकित्सक होते

हुए भी यह मिथ्या वचन कैसे बोल दिया। स्वामीजी इस विषय में इसलिए आश्वस्त थे क्योंकि उन्होंने चिकित्सा सम्बंधी पुस्तकों के अध्ययन के माध्यम से तथा जानकार लोगों से पूछकर इस बात का पता लगाया कि कैंसर की बीमारी भले ही असाध्य हो लेकिन यह छूत की बीमारी नहीं है। वे कुछ देर वहाँ रुककर कुछ सोचकर अचानक वहाँ पहुँच गए जहाँ ठाकुर लेटे हुए थे वहाँ जाने के पश्चात उन्हें ज्ञात हुआ कि ठाकुर ने दलिया खाकर उलटी कर दी थी। जिस प्याले में उन्होंने उलटी की थी उस प्याले को पूरा पी गए थे और उनका यह भी कहना था कि अब कोई भी छूत के विषय में कोई बातचीत नहीं करेगा। यह स्वामी विवेकानंद की अशेष गुरु भक्ति और गुरु की कृपा का ही परिणाम था कि वे इस प्रकार का कार्य कर पाए थे। ऐसा करते हुए उन्होंने अन्य लोगों को गुरु के प्रति आस्थाशील बने रहने की ही प्रेरणा दी। लेखक नरेंद्र ने अपने उपन्यास “तोड़ो कारा तोड़ो” के दूसरे खंड जिसका शीर्षक ‘साधना’ उसमें अपने पात्र शशि से कहलवाया है उसका मूल सार यही है। ठाकुर रामकृष्ण जिस समय कैंसर नामक बीमारी से जूझ रहे थे और डॉक्टर महेंद्रलाल सरकार ने जब सबको बताया कि ठाकुर कैंसर से पीड़ित हैं। अतः सभी को सावधान रहना चाहिए क्योंकि यह छूत की बीमारी है। यह बात जब स्वामीजी को ज्ञात हुआ तो उनका कहना था कि एक शिष्य को अपने गुरु के प्रति निष्ठावान रहना चाहिए। सद गुरु से उसके शिष्यों का कोई अहित नहीं होता है। जो गुरु शिष्यों के अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करता है उसके पास जाने के लिए भी यदि मन में संदेह पैदा हो तो इस इस जीवन का कोई महत्व नहीं है। रामकृष्ण ब्रह्मज्ञ हैं, वे सदगुरु हैं उनसे किसी भी शिष्य का अहित नहीं होगा। वे तो इस संसार का कल्याण करने के लिए ही इस संसार में आए हैं।

स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व में आध्यात्मिक प्रवृत्ति बहुत ही गहराई से भरी हुई थी। स्वामीजी जब युवावस्था में ब्राह्मसमाज से जुड़े हुए थे और साधुओं के संग उठने-बैठने लगे थे तो उस परिवेश से छुड़ाने के लिए माता-पिता के द्वारा उनके विवाह के आयोजन पर बात चल रही थी और रामचंद्र दत्त को जब इन्हें वैवाहिक बंधन में आबद्ध करने हेतु मनाने के लिए कहा गया तो रामचंद्र दत्त ने स्वामीजी के विवाह के विषय में बातचीत करते हुए जब उनसे यह जानना चाहा था कि वे विवाह क्यों नहीं करना चाहते हैं ? क्या

उन्हें बहुत बड़ा विद्वान बनना है ? क्या वे I.C.S. अधिकारी बनना चाहते हैं ? क्या उनके मन में समाज सुधारक बनने की अभिलाषा है ? तब स्वामीजी ने जो रामचंद्र दत्त से कहा था वह कथन महत्वपूर्ण है इसके माध्यम से ही उनके व्यक्तित्व में सांसारिक जीवन के प्रति आकर्षणहीनता तथा ईश्वर के प्रति प्रबल आकर्षण की भावना का परिचय मिलता है। स्वामीजी का कहना था कि "मैं पत्नी नहीं ईश्वर को खोज रहा हूँ"।[24].. उन्होंने रामचंद्र दत्त से यह भी कहा था कि वे ईश्वर को अपनी कल्पना के बल पर पाने की अभिलाषा नहीं रखते बल्कि वे ईश्वर का उसी प्रकार अपने समक्ष प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते थे जिस प्रकार से पौराणिक काल में हिंदू ऋषि-मुनि किया करते थे।

पश्चिम में स्वामीजी ने अपने ओजस्वी व्याखाणों के माध्यम से लोगों को प्रभावित किया और हिन्दूधर्म की महानता को स्थापित किया। उन्होंने अपनी विचारधाराओं के माध्यम से पश्चिम के ईसाई समाज में एक क्रांति उत्पन्न कर दिया था। परिणाम स्वरूप बहुत सारे ईसाई हिंदू धर्म के प्रति प्रभावित हुए जिनमें से एक मार्ग्रेट नोबल भी हैं जिन्होंने हिंदूधर्म के सिद्धांतों से प्रभावित होकर स्वामीजी द्वारा विशेष रूप से कहा जाए स्वामीजी द्वारा स्थापित वैदिक सिद्धांतों से प्रभावित होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण करते हुए हिंदूधर्म को स्वीकार किया और भारत माता की सेवा में पूर्ण रूप से लीन हो गईं। स्वामीजी के क्रांतिकारी व्यक्तित्व की एक धारणा भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के इन शब्दों के माध्यम से भी जाना जा सकता है। जहाँ वे (जवाहरलाल नेहरू कहते हैं कि "In America he was called the cyclonic Hindu".[25].. अर्थात् 'अर्थात् अमेरिका में उन्हें चक्रवाती हिंदू कहा जाता था'।

ऐसी बात नहीं है कि स्वामी विवेकानंद के भीतर केवल सकरात्मकता ही थी बल्कि उनमें नकरात्मकता भी थी। अंततोगत्वा वे भी एक मनुष्य ही थे। स्वामी विवेकानंद की नकरात्मकता यह है कि ठाकुर रामकृष्ण के दर्शन के लिए जब वे पहली बार दक्षिणेश्वर गए तो उनके मन में अहंकार की भावना थी कि वे जिस ठाकुर के आए हैं वह तो अनपढ़ है और वे इतने पढ़े-लिखे हैं, कलकत्ते के वकील विश्वनाथ के पुत्र हैं। ठाकुर ने जब कहा कि नरेंद्र पुरातन ऋषि पुरातन ऋषि हैं, नर रूपी नारायण हैं। तो युवक नरेंद्र के मन में जो

विचार आया उससे उनके चरित्र के नकरात्मकता की झलक मिलती है। लेखक लिखते हैं कि “नरेंद्र स्तंभित खड़ा रह गया, मैं किसके दर्शन करने चला आया वह तो सर्वथा उन्मत्त व्यक्ति है। मैं विश्वनाथ दत्त का पुत्र नरेंद्रनाथ दत्त हूँ और यह मुझसे इस प्रकार वार्तालाप कर रहे हैं”।[26]..

यहाँ लेखक ने नरेंद्र को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में दर्शाया है जिसके मन में अहंकार की भावना है कि वह बहुत ही बड़े घराने का है और शिक्षित है। बहुत बड़े वकील का पुत्र है। साधु दर्शन करते समय किसी भी व्यक्ति को उसके मन में अहंकार नहीं पालना चाहिए बल्कि मन में विनम्र भाव लेकर ही साधु में जाना चाहिए।

स्वामीजी राजा अजित सिंह के यहाँ थे तब उनके मन में यह अहंकार की भावना थी कि वे अद्वेत के जानकार हैं। सन्यासी होकर वे नर्तकियों और गणिकाओं का भजन नहीं सुनेंगे। यह विवेकानंद के भीतर की नकरात्मकता ही थी। अब बात यह आती है कि यदि आप इतने बड़े सन्यासी है नर्तकी का भजन सुनने से आपका धर्म कैसे भ्रष्ट होगा। स्वामी की मान्यता थी कि वे अद्वेत दर्शन के जानकार हैं तो फिर आप नारी और पुरुष में भेद क्यों कर रहे हैं। एक गणिका को हीन दृष्टि से क्यों देख रहे हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद के चरित्र में भी एक मनुष्य की भाँति ही सकरात्मक गुणों के साथ-साथ नकरात्मक गुण भी विद्यमान थे।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 https://www.youtube.com/watch ?v=OmulNcwfEtw&t=881s Aaj Savere - An interview with Narendra Kohli

2 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 1

3 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 14

4 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 14

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 14

[6] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 47

[7] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 90

[8] तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के प्रथम खंड निर्माण की जिल्द में उपन्यास की कथा शुरू होने से पूर्व ही लेखक के इस कथन को प्रकाशक ने उधृत किया है

[9] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 108

[10] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 108

[11] https://www.youtube.com/watch ?v=OmulNcwfEtw&t=886s Aaj Savere - An interview with Narendra Kohli

[12] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 185

[13] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 187

[14] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 187

[15] नरेंद्र कोहली, न भूतो न भविष्यति, पृष्ठ संख्या 18

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 107

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 107

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 107

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 107

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 107

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 108

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 108

[23] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 86

[24] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 241

[25] A RAGHURAMARAJU, DEBATING SWAMI VIVEKANANDA A READER, page number 14

[26] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 249

iv. जीवन दर्शन, समाज व संस्कृति

जिसे जानने के उपरांत इस संसार की प्रत्येक वस्तु की जानकारी हो जाती है कुछ भी जानने की आवश्यकता नहीं रहती वहीं दर्शन है। अंग्रेज़ी भाषा में 'philosophy' शब्द का अर्थ होता है ज्ञान के प्रति अनुराग। भारतीय चिंतन में दर्शन केवल ज्ञान के प्रति अनुराग तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसके अंतर्गत मनुष्य के जीवन को समग्रता के दृष्टिकोण से देखा जाता है। भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर दर्शन केवल आत्मज्ञान ही नहीं है बल्कि यह आत्मानुभूति भी है। भारतीय दर्शन मायावाद के पार जाने की बात करता है। इस पंचेंद्रिय ग्राह्य जगत से मुक्त होने की बात कहता है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार माया को ही प्रकृति और मायी को ही भगवान के रूप में ही जानना चाहिए। भारतीय दर्शन कहता है कि अगर इस प्रकृति की लीला को मायाधीश का चमत्कार मान लिया जाए तो इस माया के पार जाया जा सकता है। स्वामीजी विवेकानंद के अनुसार "शेताशेतेश्वर उपनिषद में पाठ करते हैं कि माया को प्रकृति के रूप में और मायी को महेश्वर के रूप में जानना चाहिए"।[1].. इस कथन का अर्थ यह है कि भारतीय दर्शन इस विश्व में जितनी वस्तुएँ हैं सब में परम ब्रह्म के तलाश की बात करता है।

समाज की परिभाषा और अवधारणा पर बात करते हुए यह कहा जा सकता है कि एक से अधिक लोगों का समुदाय जिसमें एक से अधिक सभी मानवीय क्रियाकलाप किया करते हैं। मानवीय क्रियाकलापों में आचरण,समाजिक सुरक्षा, जीवन निर्वाह आदि की क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं। समाज लोगों का ऐसा समूह है जो अपने अंदर के लोगों को छोड़कर अन्य समुदाय के लोगों से कम मेलजोल रखता है। किसी समाज के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति परस्पर सहयोग की भावना रखते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी संस्कृति के विषय में लिखते हैं कि "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। धर्म के समान वह भी अविरोधी वस्तु है। वह समस्त दृश्यमान विरोधों में सामंजस्य स्थापित करती है। भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुंदर परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जाता है"।[2]..

लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास के पात्र स्वामी विवेकानंद के माध्यम से यह दर्शाया है कि जरूरतमंदों की सेवा करना ही भारतीय दृष्टि में धर्म है। भारतीय चिंतन के अनुसार दिन-दुखियों की सेवा करना ही ईश्वर की भक्ति है। यहीं धर्म है। सेवा और धर्म को समझाने के लिए नरेंद्र कोहली के पात्र स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि"मेरी सेवा आप कर चुके डॉक्टर साहब। स्वामी बोले, अब आप रोगियों की सेवा कीजिए। किसी को शारीरिक कष्ट से मुक्ति दिलाना भी ईश्वर की उपासना ही है। यह साधु सेवा से बड़ा है"।[3].. सनातन धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने कर्म मार्ग में डटे रहना चाहिए। जिस प्रकार से भगवान आर्त जनों के दुःख-दर्द को दूर करते हैं उसी प्रकार से एक चिकिसक होने के नाते डॉक्टर लश्कर को भी रोगियों की सेवा करनी चाहिए। यहीं उनका परम कर्तव्य हैं। मानव की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।

आलोच्य उपन्यास में बौद्ध दर्शन पर स्वामीजी ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। यह घटना उस समय की है जब वे भारत भ्रमण करते हुए भागलपुर में थे और मन्मथनाथ चौधरी के यहाँ थे तथा बौद्ध दर्शन पर चर्चा कर रहे थे। लेखक लिखते हैं कि "जहाँ तक दर्शन की बात है, तथागत के शिष्यों ने वेदों की सनातन शिलाओं पर बहुत हाथ-पैर पटके, सन्यासी ने बंगला में उत्तर दिया, किंतु वे उसे तोड़ न सके और दूसरी ओर उन्होंने जनता के बीच से उस परमेश्वर को उठा लिया जिसमें हर नारी-नर इतने अनुराग से आश्रय लेता है। फल यह हुआ कि भारतवर्ष में बौद्धधर्म की स्वाभाविक मृत्यु हो गई"।[4].. सनातन धर्म के वेदों में जिन नियमावलियों का प्रतिपादन भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा किया गया है माना जाता है कि वे नियम शाश्वत हैं। बुद्ध के शिष्यों ने वेदों पर प्रहार करने का प्रयास किया परंतु वे सफल नहीं हुए। परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में बौद्धधर्म का पतन हो गया। स्वामीजी जब अपने परिव्राजक जीवन में भागलपुर में मन्मथनाथ चौधरी नामक एक बंगलाभाषी सज्जन के घर में ठहरे हुए थे तो उस समय उन्होंने उनके साथ धर्म और दर्शन आदि के बारे में काफ़ी चर्चा की थी। धर्म के बारे में चर्चा करते हुए स्वामीजी ने जो कुछ कहा था उसे लेखक ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है। "जो धर्म प्रेम के लिए प्रेम को नहीं मानता, वह केवल दुकानदारी है। सन्यासी ने कहा भक्त कहे मैं आपको कुछ देता हूँ

भगवान ! आप भी मुझे कुछ दीजिए ; और भगवान कहें कि यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारे मरने पर मैं तुमको देख लूँगा – चिरकाल तक तुम्हें जलाकर मारूँगा। सन्यासी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें मन्मथ बाबू पर टिका दीं। सकाम व्यक्ति की ईश्वर-धारणा ऐसी ही होती है"।[5].. प्रेम ही भक्ति का स्वरूप है। हिंदू दर्शन के अनुसार यह बताया गया है कि भगवान के प्रति निष्काम भाव से प्रेम करना चाहिए। गोपियों की भगवान श्री कृष्ण के प्रति जो भक्ति है वहीं भारतीय चिंतन के अनुसार वास्तविक भक्ति है क्योंकि वे केवल भगवान से भक्ति की ही माँग करती हैं। आलोच्य उपन्यास श्रृंखला के तीसरे खंड में भारतीय संस्कृति में माँ के महत्व को दर्शाने का प्रयास किया है। माता के महत्व को दर्शाने हुए लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "जब किसी से सम्बंध रखना ही है, तो उन्हीं से क्यों न रखा जाए, जिसने भगवान से हमारा सम्बंध बनाया है। एक माँ आपको चाहिए ही तो उसी माँ को क्यों न माना जाए जिसने आपको जन्म दिया है।"[6].. यह घटना उस समय की है जिस समय स्वामीजी परिव्राजक के रूप में देश भ्रमण हेतु चले गए और मास्टर महेंद्रनाथ गुप्त स्वामीजी के घर में स्वामीजी का एक चित्र लेने के लिए आते हैं। दर्शन पर बात करते हुए लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामीजी के दार्शनिक दृष्टिकोण को इस रूप में व्यक्त किया है। "ओह गंगाधर ! वे तत्काल बोले मैं अभी-अभी अपने जीवन में कुछ महानतम क्षणों का अनुभव करके उठा हूँ। मेरे जीवन की एक कठिनतम समस्या इस अश्वत्थ वृक्ष के नीचे सुलझ गई है। मुझे समाधान मिल गया है। मैंने पिंड और ब्रह्मांड की एकता को खोज लिया है। इस शरीर के पिंड में वह सब कुछ है, जिसका ब्रह्मांड में अस्तित्व है। मैंने सम्पूर्ण सृष्टि को एक परमाणु के भीतर देखा है"।[7].. हिंदू दर्शन या सनातन धर्म अथवा वैदिक धर्म का दर्शन काया तीर्थ की बात करता है। अर्थात् मनुष्य शरीर में सब कुछ समाया हुआ है।

किसी भी प्रथा को जब किसी भी समाज में उसके धर्म और संस्कृति से बाक़ायदा जोड़ दिया जाता है तो उसके विशेष कारण होते हैं। ऐसी ही किसी समाज में किसी परम्परा की शुरुआत नहीं होती। इस विषय पर लेखक नरेंद्र कोहली ने तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास श्रृंखला के पहले खंड में एक घटना का उल्लेख किया है। स्वामीजी बचपन से ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो बिना तर्क और प्रमाण के अभाव में किसी भी बात को केवल इस कारण

स्वीकार नहीं किया करते थे कि किसी ने उनसे कहा है। लेखक ने जिस घटना का उल्लेख किया है वह इस प्रकार है स्वामीजी एक बार भोजन करने के लिए बैठे तो वे अपना मस्तक खोजलाने लगे, यह देखकर माता को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका पुत्र ऐसा कार्य क्यों कर रहा है ? माता ने जब देखा तो पूछा कि उन्होंने इस प्रकार का आचरण क्यों किया ? तो उत्तर में स्वामीजी का कहना था कि उनके मस्तक पर भयंकर रूप से खुजली हो रही थी। स्वामीजी की माँ का कहना था कि भोजन की थाली हाथ में लेने के उपरांत न तो अपने शरीर का स्पर्श करना चाहिए और न ही शरीर के किसी भाग को खुजलाना चाहिए। स्वामीजी ने जब अपनी माँ से पूछा कि ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए ? तो माता का कहना था कि यह परम्परा है। लेकिन जब उन्होंने परम्परा का अर्थ जानना चाहा और यह जानना चाहा कि इस प्रकार की परम्पराओं के मूल कारण क्या है तो माता का कहना था कि वह एक पृथक विषय है। माँ ने चूँकि मना किया तो उनके पुत्र को यह बात मान लेना चाहिए। बालक नरेंद्र ने माँ की बात सुनकर जो कुछ कहा लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "माँ ! मैं किसी बात को केवल इसलिए स्वीकार नहीं कर सकता कि वह पहले से प्रचलित है। नरेंद्र दृढ़ता से बोला, मुझे कारण नहीं बताओगी तो न केवल भात की थाली हाथ में लेकर शरीर और सिर खुजालाऊँगा, वरन बाएँ हाथ से जल पीऊँगा और हाथ भी नहीं धोऊँगा। नरेंद्र ने आँखों में चुनौती लिए हुए माँ की ओर देखा। मैं केवल मूर्खतापूर्ण बातों को इसलिए स्वीकार नहीं कर सकता कि उन्हें मेरी माँ ने कहा है"।[8]..

स्वामीजी की माता को अपने पुत्र की बातें सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ और साथ ही साथ उन्हें बड़ा आश्चर्य भी हुआ उन्होंने तो कभी सपने में भी यह कल्पना नहीं की होगी कि उनका पुत्र कभी ऐसा भी आचरण करेगा और यह कहेगा कि उसकी माँ जो भी बातें कहती है वह एक प्रकार की मूर्खता है। रात को विश्वनाथ के लौट आने पर वह इस बात की चर्चा करती है तो उनका कहना था कि बच्चों को किसी बहकावे में नहीं रखना चाहिए। उन्हें किसी अंधविश्वास में नहीं रखना चाहिए। भुवनेश्वरी को उसका मूल कारण नरेंद्र को समझा देना चाहिए था। आगे लेखक नरेंद्र कोहली ने विश्वनाथ की विचारधाराओं को इन शब्दों में व्यक्त किया है। "विश्वनाथ का स्वर पर्याप्त सहज था, पर तुम भी एक बात का

ध्यान रखो। अब वह छोटा नहीं है, किशोरावस्था की ओर बढ़ रहा है। उसका पौरुष स्वतंत्र होने के लिए छटपटा रहा है। और फिर हमने ही उसे तर्क करना सीखाया है। अब स्वयं ही तर्क का विरोध नहीं कर सकते। यदि उसे अपने प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं मिलेगा, तो वह और भी उदंड हो जाएगा, और उसका इस प्रकार का अनाचार और भी बढ़ जाएगा"।[9]..

विश्वनाथ के कहने के अनुसार उनकी माता भुवनेश्वरी ने नरेंद्र को समझाते हुए कहा कि ऐसी बात नहीं है कि बायाँ हाथ अपवित्र है वह भी तो मनुष्य के शरीर का ही अंग है। अगर एक हाथ से भोजन किया जाएगा तो भोजन धीरे-धीरे ग्रहण किया जा सकता है और भोजन अच्छी प्रकार शरीर के भीतर जाकर पच जाता है और शारीरिक शक्ति का संचार भी सुचारू रूप से होता है। बात यह है कि अगर कोई व्यक्ति अपने दोनों हाथों की सहायता से भोजन करेगा तो उसके भोजन में गतिशीलता आ जाएगी परिणाम स्वरूप भोजन सुपाच्य नहीं हो पाएगा। स्वच्छ हाथों से भोजन करना चाहिए क्योंकि हाथ परिष्कृत न होने से उसमें लगे जीवाणु भोजन के साथ शरीर के भीतर प्रवेश कर सकते हैं परिणाम स्वरूप शरीर भी रोगग्रस्त हो सकता है। यदि परिष्कृत हाथों से मस्तक आदि का स्पर्श किया जाए अथवा उन्हें खुजलाया जाए तो हाथ पुनः गंदे होने की सम्भावना रहती है। प्रत्येक मानव की बुद्धि इस स्तर की नहीं होती कि उसे वास्तविक स्थिति समझाया जा सके। इसीलिए इसे एक परम्परा बना दी गई है। बात जहाँ तक धर्म व दर्शन की है, भारतीय आध्यात्मिक दर्शन या सनातन दर्शन अथवा हिंदू दर्शन के अनुसार प्रेम को ही ईश्वर भक्ति का माध्यम माना गया है। उदाहरण हेतु गोपियों के मन में भगवान श्री कृष्ण के प्रति जो प्रेम है वह भक्ति नहीं है तो और क्या है। भगवान श्री कृष्ण गोपियों के लिए केवल प्रेम के विग्रह ही हैं। गोपियाँ यह नहीं देखती हैं कि वे महाराज हैं, देश के शासक हैं। उनके लिए कृष्ण केवल प्रेम के साक्षात स्वरुप हैं। हिंदू दर्शन या सनातन दर्शन से अभिप्राय केवल निष्काम भक्ति है। स्वामी विवेकानंद के एक शिष्य एडवर्ड टोरंटो स्टर्डी महाभारत के एक प्रसंग को लेकर जिस प्रकार का चिंतन कर रहे थे उसे लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है। "स्टर्डी के मन में महाभारत की कथा के वे दृश्य घूम रहे थे जहाँ द्रौपदी

अपने पति को उपालम्भ दे रही थी कि उनका धर्म और उनकी भक्ति किस प्रकार की है ? वे अपनी पत्नी और भाइयों के साथ नंगे पाँव और भूखे पेट वन में भटक रहे हैं, और अधर्मी दुर्योधन हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बैठा विलासपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है। उसका उत्तर देते हुए युधिष्ठिर ने निष्काम भक्ति की स्थापना की थी, जिसे गीता में कृष्ण ने प्रतिपादित किया है। ईश्वर से इसलिए प्रेम नहीं करते क्योंकि हमें उससे कुछ लेना है। भक्ति तो केवल भक्ति के लिए है निष्काम भक्ति"।[10]..

स्वामीजी की मान्यता है कि धर्म का विभाजन दो तरीके से किया जा सकता है। पहला अंधविश्वास और दूसरा पूर्ण आध्यात्मिकता। अगर इनमें से किसी को भी प्रभावी बनाना है तो उसके प्रति मानव के मन में प्रेम की भावना होनी चाहिए। अब बात यहाँ यह है कि इनमें से किसके प्रति उसके मन में प्रेम की भावना उदित होनी चाहिए तो कहना होगा कि मन में प्रेम की भावना तो पूर्ण आध्यात्मिकता के प्रति ही होनी चाहिए। दर्शन शब्द का साधारण अर्थ देखना होता है। अर्थात् यहाँ यहीं कहा जा सकता है कि भगवान या ईश्वर इस संसार के समस्त प्राणियों को समान रूप से देखते हैं। उनके आचरण में किसी भी प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं होता है। अर्थात् इस संसार के समस्त प्राणियों के प्रति ब्रह्म की सम दृष्टि होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि स्वामी विवेकानंद ने एक ऐसे दर्शन को स्थापित करने का प्रयास किया जिसके माध्यम से समाज में एक समान आधार भूमि की सृष्टि की जा सके। व्यक्ति तथा उसके नाम को वे ईश्वर के नाम पर शक्तिशाली बनाना चाहते थे। एक ऐसे दर्शन की बात स्वामीजी ने की थी जिससे मनुष्य के भीतर में निहित देवत्व को जगाया जा सके। हिंदू आध्यात्मिक दर्शन में बार-बार देवमानव की बात की गई है। उपन्यासकर नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद की विचारधाराओं को दर्शाते हुए इस प्रकार लिखा है कि "मैं एक ऐसे दार्शनिक सिद्धांत की स्थापना करना चाहता हूँ, जो संसार के किसी भी सम्भव धर्म का आधार बन सके। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मैं संसार के वर्तमान और भावी सारे संसार के लिए एक समान आधार भूमि तैयार करना चाहता हूँ। मेरे मन में सारे धर्मों के लिए अत्याधिक सहानुभूति का भाव है। मैं किसी का भी विरोध नहीं करता। मेरा ध्यान व्यक्ति पर केंद्रित है, उसे शक्तिशाली बनाने के लिए। उसे यह

सीखाने के लिए कि वह स्वयं ही दिव्य है। मैं लोगों का आह्वान करता हूँ कि वे अपने भीतर की दिव्यता के प्रति जागरूक हों। यहीं आदर्श स्थिति है – या सारे धर्मों के प्रति चेतना या अवचेतना की स्थिति है"।[11]..

हिंदू दर्शन के अनुसार मानव ईश्वर का ही स्वरूप है। मनुष्य देव स्वरूप है कदाचित यहीं कारण है कि भगवान मानव के रूप में जन्म लेने को लालयित रहते हैं। एक बार इस सुंदर धरती पर मानव का रूप लेकर उनकी अभिलाषा की पूर्ति नहीं हो पाती। अतः भगवान बार-बार मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करना चाहते हैं। भगवान श्री कृष्ण श्रीमद् भगवत गीता में कहते हैं कि "धर्म की स्थापना के लिए मैं इस संसार में बार-बार जन्म लेता हूँ।"देवभाषा संस्कृत में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि "धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे"। इस श्लोक में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि धर्म की स्थापना करने लिए इस धरा में मानव के रूप में प्रत्येक युग में मैं अवतार लेता हूँ। हालाँकि भगवान श्री कृष्ण ने और भी कई रूपों में अवतार धारण किया है जैसे कि कूर्म और वराह आदि। लेकिन यहाँ मानव के देवत्व को लेकर बात हो रही है, अतः इस श्लोक की व्याख्या करते हुए केवल मानव रूप का ही उल्लेख किया गया है, क्योंकि मनुष्य ही इस संसार का एक ऐसा प्राणी है जो जगत में धर्म की स्थापना कर सकता है। स्वामी विवेकानंद की यह मान्यता थी कि मनुष्य दिव्यलोक का निवासी है। देव स्वरूप ही मानव का वास्तविक स्वरूप है। स्वामीजी के गुरु ठाकुर रामकृष्ण परमहंस की मान्यता थी कि ब्रह्म जब सक्रिय होता है तब उसे माँ जगदंबिका कहा जाता है। यह बात उन्होंने प्रतापचंद्र हाजरा से कही थी। इस जागृत ब्रह्म के स्वरूप को मानव के भीतर ही जगाया जा सकता है। स्वामी विवेकानंद ने आलोच्य गद्यांश में देवमानव की बात की है। मनुष्य में देवता का निवास होता है। मनुष्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी महापुरुष चाहे वह चैतन्य हो, श्री रामकृष्ण हों, ईसा मसीह हों क्यों उन्हें पूजा जाता है इसका मूल कारण है कि उनके भीतर हरि विद्यमान हैं और उन्होंने अपने भीतर छिपे हुए देवतत्व को जगाया था। स्वामीजी ने बार-बार दरिद्र नारायण की सेवा की बात इसलिए की थी क्योंकि मनुष्य में भगवान का निवास होता है।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य इस सांसारिक बंधन से मुक्त होना है। अगर मुक्ति की प्राप्ति करनी है अर्थात् भगवान से मिलना है तो मनुष्य के हृदय में प्रेम की भावना निहित होनी चाहिए। धर्म का आधार प्रेम ही है। भगवत साधना में रत रहने से मानव के जीवन में एक दिन ऐसा आएगा जब वह मुक्त हो जाएगा। जब यहाँ बात धर्म, दर्शन आदि को लेकर हो रही है तो यहाँ श्रीमद् भगवत गीता की बात उभरना स्वाभाविक है। पहले स्वामीजी जब परिव्राजक थे और घूमते हुए भागलपुर पहुँचे थे और वहाँ मन्मथनाथ चौधरी से चर्चा करते हुए उन्होंने यह बताया था कि गीता वेदों का भाष्य है उसके समान वेदों का अन्य कोई भाष्य नहीं है। स्वामी विवेकानंद जब पश्चिम में अमेरिका से इंग्लैंड की राजधानी लंदन गए वहाँ एडवर्ड टोरंटो स्टर्डी के परिचित एक व्यक्ति जिसे स्टर्डी ने ही स्वामीजी से परिचित करवाने हेतु बुलाया था। वह व्यक्ति लंदन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक था और वहाँ तेलुगु और तमिल भाषा पढ़ाता था। उसने अपने जीवन का एक लम्बा समय भारतवर्ष में बिताया था। उसका नाम फ़्रेज़र था। उससे अध्यात्म दर्शन के बारे में चर्चा करते हुए स्वामीजी का कहना था कि भारतीय दर्शन की जागृति अवश्य ही होगी। इतना ही नहीं वह सम्पूर्ण विश्व में फैलेगा। साथ ही साथ स्वामीजी ने यह भी बताया कि भारत का मूल आध्यात्मिकता है। फ़्रेज़र से स्वामीजी ने गीता के विषय में भी बात की। गीता के दार्शनिक तत्व के प्रति स्वामीजी के जो विचार हैं उसे लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया है। “गीता में साधक को धीरे-धीरे उस चरम लक्ष्य – मुक्ति को साधने का उपदेश दिया गया है। उसमें प्रेम का बहुत महत्व है। इस प्रेम में रसास्वादन का उन्माद और प्रेम का मद है, जो मनुष्य को तत्काल मुक्त कर देता है। यहाँ गुरु और शिष्य, शास्त्र और उपदेश ईश्वर और स्वर्ग – सब एकाकार हैं। भय के भाव का लेशमात्र भी नहीं है।सब कुछ बह गया है। शेष रह गई है केवल प्रेमोन्मत्तता। उस समय संसार का कुछ भी स्मरण नहीं रहता। भक्त उस समय संसार में कृष्ण, एकमात्र कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देखता। उस समय अपने प्राणों में वह केवल श्री कृष्ण का ही दर्शन करता है। उसका चेहरा भी उस समय श्री कृष्ण के समान ही दिखता है। उसकी आत्मा उस समय कृष्णमयी हो जाती है। यह है गीता और श्री कृष्ण की महिमा। हमारे लक्ष्य श्री कृष्ण हैं। गीता हमें कृष्ण

तक ले जाने की सीढ़ी ही तो है, और सीढ़ी कभी छत नहीं बन सकती"।[12].. अर्थात् हिंदू चिंतन के अनुसार सांसारिक बंधन से मुक्ति ही मानव जीवन का मूल लक्ष्य है। यहाँ मुक्ति का अभिप्राय ब्रह्मतत्व में लीन होना है। उसी के लिए इस संसार में मनुष्य योनि में जन्म मिला है। गीता एक ऐसा ग्रंथ है जो ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग सुझाती है। वह मनुष्य को अपने कर्मों के माध्यम से निरंतर भगवत स्मरण का उपदेश देती है। फल की अभिलाषा किए बिना ही कर्म करते रहना चाहिए। बात यहाँ साधना की भी कही गई है लेकिन साधना कर्म त्याग की बात नहीं की है। साधक जब भगवान की भक्ति रूपी प्रेम में डूब जाता है तो उसे सर्वत्र सर्वदा एक ही दृश्य दिखाई देता है अर्थात् सब कुछ एकाकार हो जाता है। कहीं कुछ अंतर दिखाई नहीं देता। उदाहरण के लिए जो गुरु है वहीं शिष्य भी है, सारे शास्त्र भी वहीं हैं। यहाँ तक कि स्वयं भगवान भी वहीं हैं। इस संसार के सारे मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे,ग्रह-नक्षत्र सभी एक जैसे प्रतीत होते हैं। हिंदू दर्शन में इस स्थिति को अद्वैत की संज्ञा दी जाती है। यह साधना की उच्च स्थिति है। इस समय साधक पूर्ण रूप से भगवतमय हो जाता है। उसकी आत्मा पूर्ण रूप से भगवतमयी हो जाती है। हिंदू चिंतन बार-बार इसी बात का सुझाव देती है कि भगवान को प्राप्त करना ही वास्तविक उद्देश्य है।

यहाँ दर्शन पर बात करते हुए जवाहरलाल नेहरू के एक कथन को उल्लेख करना आवश्यक है। यह कथन इस प्रकार है "He preached the monism of Advaita Philosophy of the Vedanta and was convinced that only this could be the feature religion of thinking huminity. For the Vedanta was not only spiritual but rational and in harmony with scientific investigation of external nature."[13].. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में कहा जाए तो इस प्रकार कहा जा सकता है कि "अद्वैत वेदांत के एकात्मवाद की शिक्षा देते हुए उन्होंने यह आश्वस्त किया कि केवल यहीं चिन्तनशील मानवता के भविष्य का धर्म हो सकता है। क्योंकि वेदांत केवल आध्यात्मिकत ही नहीं बल्कि तार्किक एकत्व के साथ बाह्य प्रकृति का वैज्ञानिक अनुसंधान है। वेद ब्रह्मज्ञान के प्रतीक हैं। स्वामीजी की मान्यता है कि वेदों में बहुदेववाद की चर्चा

नहीं है उसमें एकेश्वरवाद की ही चर्चा की गई है। जहाँ तक वेदांत का प्रश्न है वह तर्क के सिद्धांत के आधार पर किसी भी विषय को स्वीकार करता है।

भारतीय दर्शन और संस्कृति से सम्बंधित एक उदाहरण लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास "तोड़ो कारा तोड़ो" के खंड संख्या छः में दर्शाने का प्रयास किया है। "स्वामी हँसे, शायद तुमने कहीं ऐसा चित्र देखा हो कि एक स्त्री मूर्ति एक पुरुष मूर्ति पर खड़ी है। इसका अर्थ है कि माया के आवरण को हटाए बिना हम ज्ञान लाभ नहीं कर सकते। ब्रह्म निर्लिंग है, वह अज्ञात और अज्ञेय है। वह जब स्वयं को अभिव्यक्त करता है, तो स्वयं को माया के आवरण से आवृत कर जगजननी का स्वरूप धारण करता है और सृष्टि प्रपंच का विस्तार करता है। धराशायी पुरुष – शिव अथवा ब्रह्म माया से आवृत्त होने के कारण शव हो गया है। अद्वैतवाद के अनुसार ज्ञानी कहता है कि मैं बलपूर्वक माया को हटाकर, ब्रह्म को प्रकाशित करूँगा, किंतु द्वैतवादी या भक्त कहता है कि उन जगजननी से प्रार्थना करने पर वे स्वयं ही मार्ग दे देंगी,तभी ब्रह्म प्रकाशित होगा। माँ के हाथ में ही चाबी है। अतः माँ की पूजा करनी होगी।" आगे स्वामीजी यह भी कहते है कि "मैं बद्धावस्था है। बंधन के टूटते ही मुक्तावस्था प्राप्त हो जाती है और मैं समाप्त होकर वह प्रकाशित हो जाता है। कहना यह चाहिए कि मैं स्वयं को वह के रूप में पहचानने लगता है"।[14]..

आध्यात्मिक दर्शन में यह बात बार-बार बताने का प्रयास किया गया है कि मोह-माया के बंधन को तोड़कर ही भगवान का दर्शन किया सकता है। स्वामीजी की मान्यता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जगन्माता का शिव के ऊपर खड़ा होना माया के आवरण को हटाने के अर्थ में देखा जाना चाहिए। हिंदू दृष्टिकोण के आधार पर अगर देखा जाए तो यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि नारी केवल नारी ही नहीं वह ब्रह्म शक्ति का आधार भी है। मनुष्य का लक्ष्य इस मोह-माया के पार जाना है। हिंदू दर्शन में इस माया रूपी दानवी को बार-बार हटाने की बात कही गई है। माया शब्द को परिभाषित करते हुए लंदन के व्याख्यान में स्वामीजी ने कहा था कि "माया शब्द को आप सभी ने प्रायः सुना ही होगा। साधारणत: कल्पना के अर्थ में ही माया शब्द व्यवहारित होता है, किंतु वास्तविक अर्थ यह नहीं है। वैदिक साहित्य में माया शब्द

का अर्थ प्रतारणा के अर्थ में भी लिया जाता है। यहीं माया शब्द का प्राचीनतम अर्थ है। वेदों में हमें इस प्रकार के वाक्य देखने को मिलता है कि 'इंद्र ने माया द्वारा विभिन्न रूप धारण किया था। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो माया शब्द का प्रयोग 'इंद्रजाल' के अर्थ में हुआ है। श्वेताश्वेतेश्वर उपनिषद में पढ़ते हैं कि माया प्रकृति है और मायी महेश्वर हैं"।[15].. इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भगवान ने ही माया की सृष्टि की है और वे ही उसे समाप्त भी कर सकते हैं। इसे समाप्त करने की शक्ति और किसी के पास नहीं है। स्वामी विवेकानंद की मान्यता है कि शिव और शक्ति मूर्ति उसी बात का प्रतीक है। विशेष रूप से वह मूर्ति जिसमें शक्ति शिव के ऊपर चढ़ी हुई है।

किसी भी देश या समाज की संस्कृति के साथ उसकी भाषाओं की भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती है। स्वामीजी बार-बार कहा करते थे कि हमें अपने देश को, समाज को जानना चाहिए और स्वयं को जानना चाहिए। व्यक्ति जब तक अपनी भाषा को नहीं जान पाएगा तब तक वह अपनी संस्कृति को कभी भी नहीं जान पाएगा। अतः जब वे पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर के कलकत्ता के सुकिया स्ट्रीट में स्थित विद्यालय मेट्रोपोलिटन इन्स्टिटूशन के छात्र थे तो उन्हें अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाने के लिए चुना गया था क्योंकि तब भारत में अंग्रेज़ों का शासन था और अंग्रेज़ी भाषा को उसे अनिवार्य कर दिया गया था। लेकिन उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा पढ़ने का प्रबल विरोध किया था क्योंकि उनकी मान्यता थी कि अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान प्राप्त व्यक्ति अपने देश के लिए पराया भी बन सकता है। साथ ही साथ उन्हें अपने देश की किसी अन्य भाषा की भी पूर्ण जानकारी नहीं हो पायी थी। इस स्थिति में तो वे विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात वे अपने देश के लिए पराए हो जाएँगे उन्हें यह बात रास नहीं आई। वे अपने एक रिश्तेदार नरसिंह दत्त ने जब स्वामीजी से यह जानना चाहा था कि स्वामीजी अंग्रेज़ी भाषा क्यों नहीं पढ़ना चाहते हैं उनके उम्र के समस्त मेधावी बालक तो अंग्रेज़ी पढ़ना चाहते हैं ? नरसिंह दत्त के इस प्रकार पूछे जाने पर स्वामीजी ने जो उत्तर दिया था जब वे बालक नरेंद्र ही थे वह द्रष्टव्य है। उसे लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है। "देखिए न ठाकुर दा। विद्यालय में वे लोग मुझे अंग्रेज़ी पढ़ाना चाहते हैं। अभी बंगला और संस्कृत तो मुझे अच्छी तरह आई नहीं, अपने

देश की और कोई भाषा मैंने सीखी नहीं, और वे चाहते हैं कि अंग्रेज़ी पढ़कर मैं अपने देश के लिए पराया हो जाऊँ"।[16]..

स्वामीजी इस अंग्रेज़ी पढ़ाने के विचार को लेकर उनका मन इसका अधिक पीड़ित हुआ था कि उन्हें ऐसा लग रहा कि कोई व्यक्ति बलपूर्वक उनकी कोई बहुत ही मूल्यवान वस्तु उनसे छीनने का प्रयास कर रहा है। कोई उनसे उनकी सारी पहचान, सारा अस्तित्व ही जैसे लूटकर ले जा रहा हो। विद्यालय से घर लौटकर वे वे अपने पिता अंग्रेज़ी भाषा पढ़ने के लिए विद्यालय में उनके नाम का चयन किया गया है। उनकी बातों को सुनकर उनके पिता का कहना था कि यह तो अत्यंत ही प्रसन्नता की बात है कि उनके पुत्र को विद्यालय में अंग्रेज़ी भाषा पढ़ने के लिए चुना गया है। पिता की इस बात सुनकर स्वामीजी ने उस समय जो कुछ कहा था वह इस प्रकार है "कोई मुझसे मेरा सारा अस्तित्व छीनने का प्रयत्न कर रहा है और आप कह रहे हैं कि यह प्रसन्नता की बात है"।[17].. एक बार न्यूयार्क हेराल्ड से एक पत्रकार स्वामीजी का साक्षात्कार लेने के आता है तो स्वामीजी से उसकी भेंट नहीं हो पाती है। स्वामी के अलावा उसकी भेंट मिस वाल्डो से होती है और वे उसे हिंदू दर्शन में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग के विषय में समझाती हैं।

स्वामी विवेकानंद जिस समय थे वह समय 19वीं शताब्दी का समय था। तत्कालीन भारतवर्ष के हिंदू समाज में बहुत सारी प्रथाएँ प्रचलित थीं जिनसे तत्कालीन समाज की जनता का जीवन संकटमय हो चुका था। जैसे बाल-विवाह की प्रथा, सती दाह की प्रथा, विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन न होना आदि। नरेंद्र कोहली विरचित "तोड़ो कारा तोड़ो" के पहले खंड में हमें एक घटना देखने को मिलती है। यह घटना एक बाल-विधवा के पुनर्विवाह से सम्बंधित है। उच्चवर्गीय हिंदू समाज में बाल-विधवाओं के लिए पुनर्विवाह की प्रथा नहीं थी। हालाँकि जहाँ तक निम्न वर्गों की बात है, यह नियम प्रचलित था। तत्कालीन समाज में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित होने के कारण बचपन में ही कन्याओं का विवाह कर दिया जाता था। कभी-कभी पति की उम्र अधिक होने के कारण पति दिवंगत हो जाते थे। परिणाम स्वरूप नव विवाहिता वधु को काफ़ी कष्टों का सामना करना पड़ता था। कालांतर में स्वामी विवेकानंद जब पाश्चात्य देशों में गए तो उन्होंने एक बार कहा था कि

पश्चिमी देशों के उच्च वर्गों को जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं वहीं हमारे यहाँ निन्म वर्गों को प्राप्त है।उन्होंने यह देखा था कि अमेरिका की युवतियाँ काफ़ी स्वतंत्र हैं। वे आकाश में उन्मुक्त विचरण करने वाले पक्षियों की भाँति ही सतंत्र हैं। उन्होंने तत्कालीन अमरीकी समाज में यह देखा था कि यहाँ की महिलाएँ काफ़ी शिक्षित हैं और काफ़ी स्वतंत्र विचार रखने में समर्थ हैं। उन्होंने यह भी देखा था कि तत्कालीन अमेरिका में पच्चीस-तीस आदि वय से पहले लड़कियों का परिणय नहीं होता था। वे इन विषयों के बारे में अपने भारतीय मित्रों, शिष्यों, गुरुभ्राताओं को भी पत्र के माध्यम से सूचित करते थे। यहाँ जिस घटना के बारे में है वह भारत के तत्कालीन समाज में प्रचलित बाल-विवाह से जुड़ी हुई है। एक बार स्वामी विवेकानंद के पिता विश्वनाथ दत्त को अपने वकालत के काम के चलते रायपुर जाना पड़ा था और वहाँ अपने कार्य के चलते उन्हें पूरे पाँच वर्ष बिताना पड़ा था। परिणाम स्वरूप उन्होंने अपने परिवार को भी वहाँ बुला लिया था। रायपुर में अपने कार्य के सिलसिले में पूरे पाँच वर्ष बिताकर जब वे कलकत्ता लौट आए थे उसी समय की यह घटना है। उनके घर के निकट ही धीरज मुखर्जी नामक एक ब्राह्मण परिवार का मकान भी था। यह परिवार अपनी बाल-विधवा कन्या का विवाह करना चाहता था। परंतु समाज इसकी मान्यता नहीं दे रहा था क्योंकि यह नियम समाज के उच्च वर्ग के लिए लागू नहीं था। परिणाम स्वरूप धीरज मुखर्जी और उनके सम्पूर्ण परिवार के लिए काफ़ी दुविधाग्रस्त स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी ने इस विवाह का समर्थन किया और बाक़ायदा सहायता भी प्रदान की। स्वामीजी के माता-पिता भी तत्कालीन समाजिक प्रथाओं के प्रति एक प्रगतिशील सोच रखा करते थे। जिस प्रथा का विरोध करना उन्हें उचित जान पड़ता था उसका वे बाक़ायदा विरोध किया करते थे और जिस कार्य में उन्हें समाज का हित दिखाई पड़ता था उस कार्य को सुचारू रूप से सम्पन्न करने हेतु वे लोगों के अपने सहायक हाथों को बढ़ाया करते थे। इनकी इस मानसिक प्रवृत्ति का वर्णन लेखक नरेंद्र कोहली ने शब्दों में व्यक्त किया है। “हमें मुखर्जी बाबू की सहायता करनी चाहिए। भुवनेश्वरी ने जैसे पति के सामने प्रस्ताव रखा।चलो, चलते हैं विश्वनाथ ने कहा। मैं देखता हूँ विवाह को कौन रोकता है। विश्वनाथ कुछ आवेश में थे, यदि मोहल्ले वालों ने गड़बड़ की तो पुलिस बुला लूँगा”।[18]..

स्वामी विवेकानंद के पिता विश्वनाथ स्वयं हिंदू समाज में प्रचलित जाति-प्रथा के ख़िलाफ़ थे। वे समाज की सभी जातियों और धर्मों के प्रति सदैव समभाव रखते थे। वे एक उदार विचारधारा सम्पन्न व्यक्ति थे। इसका एक और उदाहरण लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास "तोड़ो कारा तोड़ो" के निर्माण नामक खंड में प्रस्तुत किया है।"और सहसा नरेंद्र को याद आया कि बाबा से डरने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उसने बाबा के एक मुसलमान मुवक्किल से संदेश लेकर खा लिया था, तो ठाकुर माँ ने दुनिया-भर का शोर मचाया था, पर बाबा ने तो उसे तब भी कुछ नहीं कहा था। उन्होंने हँसकर मात्र इतना ही कहा था, संदेश तो संदेश ही रहेगा, चाहे दुकान से हिंदू ख़रीदकर लाए, या मुसलमान"।[19]..

स्वामीजी भारतीय समाज में प्रचलित जातिवादी व्यवस्था के समर्थक नहीं थे। स्वामी विवेकानंद अपने परिव्राजक जीवन में जब सम्पूर्ण भारतवर्ष की यात्रा पर निकलने थे और एक समय जब वे अपने गुरुभ्राता स्वामी अखण्डानंद के साथ उत्तराखण्ड की यात्रा कर रहे थे तब लम्बे समय तक क्षुधा पीड़ित होने के कारण चल ही नहीं पा रहे थे उन्हें और उनके गुरुभ्राता को अल्मोड़ा जाना था और मार्ग अभी भी चार मील शेष था। लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "स्वामी चल तो रहे थे, किंतु उनकी चाल में अब पहले जैसा वेग नहीं रह गया था, यद्यपि उनका चेहरा उतना ही प्रसन्न दिखाई दे रहा था। थकान उनपर हावी हो रही थी; उसमें भूख का भी योगदान था, किंतु स्वामी थे कि उससे हार मानने को तैयार नहीं थे। वे अल्मोड़ा पहुँचकर ही रुकना चाहते थे। अल्मोड़ा अभी दो मील था कि स्वामी के पग कुछ विचलित हुए, पर उन्होंने अपने आप को धक्का दिया। परिणाम यह हुआ कि पग तो आगे बढ़े नहीं शरीर नीचे आ गया। अखण्डानन्द ने स्वामी को भूमि पर ढेर होते देखा तो आशंकित हो उठे इसी परिणाम की चिंता थी उन्हें। उन्होंने आगे बढ़कर स्वामी को संभाला, किन्तु तब तक स्वामी भूमि पर प्रायः लेट चुके थे। अखंडानंद के मन में एक बार असहायता जागी : यदि स्वामी ऐसे असमर्थ होकर लेट जाएँगे तो और कोई क्या कर सकेगा ; किंतु इस समय जो कुछ हो सकता था अखंडानंद को ही करना था"।[20]..

अपने गुरुभ्राता की चिंता के कारण स्वामी अखंडानंद (गंगाधर) का मन अत्यंत विचलित हो गया था। परिणाम स्वरूप उन्हें स्वामी विवेकानंद के प्राण रक्षा की चिंता होने

लगी थी। वे लोग एक ऐसे स्थान पर थे जहाँ न तो कोई गाँव-घर था और न ही कोई मनुष्य दिखाई दे रहा था। कुछ दूर पर उन्हें एक घेर सा दिखाई दिया। उनके मन में एक आशा की किरण जाग उठी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि वहाँ उन्हें अपने मित्र तथा गुरुभ्राता की प्राण रक्षा के लिए सामग्री मिल सकती है। वे उस घेर की बढ़ते चले गए। जाकर उन्होंने देखा कि यह घेर मुसलमानों का एक क़ब्रिस्थान था। उन्हें थोड़ा बहुत आश्चर्य भी हुआ कि वे एक ऐसे स्थान पर अपने मित्र के लिए जीवन की माँग करने आ गए थे जहाँ मृत्यु के उपरांत पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार किया जाता है। चाहे वह किसी भी धर्म से सम्बंधित ही क्यों न हो। उन्होंने देखा कि वहाँ एक कुटिया थी और उससे लगा हुआ एक फ़क़ीर बैठा हुआ था। शायद वह फ़क़ीर क़ब्रिस्थान का चौकिदार था। वे उसकी ओर बढ़ गए। उनका अनुमान सही था वह व्यक्ति क़ब्रिस्थान का चौकिदार की था। फ़क़ीर को जाकर उन्होंने अपनी समस्या बताई कि उनका साथी भूख प्यास से व्याकुल होकर अचेत हो गया है। वे लोग बहुत दूर से आ रहे हैं और देश भ्रमण करने हेतु निकले हैं। वह फ़क़ीर बहुत दयालु था वह स्वामीजी की सहायता करने को तैयार हो गया। अखंडानंद को लग रहा था कि खाद्य सामग्री के साथ जल भी मिल सकता है। जल तो वहाँ मिला नहीं परंतु फ़क़ीर की टोकरी से एक खीरे की प्राप्ति हुई। उसी खीरे को लेकर और खीरा चीरने हेतु एक चाकु भी ले लिया और वे उस दिशा की ओर चल पड़े जहाँ स्वामी विवेकानंद प्रायः अचेत अवस्था में पड़े हुए थे।स्वामीजी जातिप्रथा में विश्वास नहीं करते थे क्योंकि सन्यासी बनकर वे समाज की जातिवादी विचारधाराओं से ऊपर उठ चुके थे। सन्यासियों के लिर तो संसार की सारी जातियाँ, सारे धर्म, सारे समाज उनके अपने ही होते हैं। वे तो भगवान के मार्ग के पथिक होते हैं। वे संसार के समस्त प्राणियों में परमब्रह्म का ही दर्शन करते हैं। फ़क़ीर ने खीरा चीरकर स्वामी की और बढ़ाया और उनसे खाने के लिए अनुरोध किया, परंतु स्वामी इतने दुर्बल हो चुके थे कि उनमें अपने हाथ से खीरा खाने की शक्ति नहीं थी। अतः उन्होंने फ़क़ीर से कहा कि वह खीरा उनके मुख में डाल दे। फ़क़ीर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक हिंदू सन्यासी उसे खिलाने के लिए कह रहा है वह तो एक मुसलमान है। एक मुसलमान फ़क़ीर एक हिंदू सन्यासी को कैसे भोजन खिला सकता है। उसने जब कहा कि "साधु महाराज ! मैं

मुसलमान हूँ और क़ब्रिस्थान में रहता हूँ। एक प्रकार से क़ब्रिस्थान का चौकिदार हूँ। मेरे हाथ से खाएँगे" ?[21]..

उस फ़क़ीर के इस कथन के उत्तर में स्वामीजी ने जो कहा था वह काफ़ी महत्वपूर्ण है। इससे यह पता चलता है कि स्वामीजी समाज में प्रचलित जातिवाद के समर्थक नहीं थे बल्कि सभी उनकी दृष्टि में समान थे। उनमें कोई भेद नहीं था। स्वामीजी ने फ़क़ीर से जो कुछ कहा था उसे लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है।"तुम जो कोई भी हो, आख़िर में सब भाई हैं।"आगे लेखक लिखते हैं "तुमने मेरे प्राण बचाए हैं जुल्फ़िकर अली ! स्वामी बोले, मैं तुम्हारा यह उपकार कैसे चुकाऊँगा ? यह खीरा आज की संजीबनी बूटी है। मुझ अचेत लक्ष्मण के लिए तुम हनुमान बनकर इसे ले आए। इसमें लज्जित होने की कोई बात नहीं है"।[22].. स्वामीजी जिस समय थे वह 19वीं शताब्दी का भारतीय समाज था। यह एक ऐसा समय था जब हमारे भारतीय समाज में विशेष रूप से बंगाल के समाज में ब्राह्म समाज नामक एक संस्था का प्रभाव था जो सामाजिक जागरण की बात करता था। यह संस्था एकेश्वरवाद की चर्चा करती थी। अपने सन्यास जीवन से पहले और अपने गुरु श्री रामकृष्ण से भेंट होने से पूर्व स्वामी विवेकानंद स्वयं भी ब्राह्म समाज से प्रभावित थे। वे स्वयं इस ब्राह्म समाज से जुड़े हुए थे। ब्राह्म समाज एक ऐसा समाज था जो हमारे समाज में विशेष रूप से कहा जाए कि हिंदू समाज में प्रचलित कुरितियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाया करता था जैसे बाल-विवाह, विधवा विवाह आदि प्रथाओं का ब्राह्म समाज ने घोर विरोध किया। ब्राह्मसमाज एक ऐसी संस्था थी कि जो ईसाइयों और मुसलमानों के समान ही सनातन धर्म, या वैदिक धर्म को निकृष्ट श्रेणी का धर्म मानते हुए उसकी निंदा किया करता था।

सनातन धर्म में या हिंदूधर्म में दान की महिमा का भी काफ़ी महत्व है। लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामीजी के माध्यम से दान की महिमा को दर्शाया है। यहाँ मुख्य रूप से यहीं बताने का प्रयास किया गया है कि दान में सर्वस्वता की भावना होनी चाहिए। साथ ही साथ यह जो कहा जाता है कि क्षुधातुर व्यक्ति को भोजन दान करना भी शास्त्र के अनुसार धर्म का अंग माना जाता है। उस भूख से व्यक्ति के रूप भी स्वयं परमब्रह्म का आगमन किसी

के भी घर में हो सकता है। इसीलिए स्वामीजी ने भी अपने गुरु की भाँति दरिद्र नारायण की सेवा को महत्व दिया। ईश्वर के तो अनंत रूप हैं। वे किसी भी रूप में आकर हमारी परीक्षा ले सकते हैं। हिंदू चिंतन में कर्तव्यपरायणता को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। ऐसा कहना उचित है।इस उदाहरण के माध्यम से यहीं बताने का प्रयास किया गया है कि व्यक्ति जिस क्षेत्र में हैं उसे अपने क्षेत्र के कर्तव्य को सुचारू रूप से सम्पादित करने का प्रयास चाहिए। हिंदू चिंतन के अनुसार कहा जाता है कि 'अतिथि देवो भव' अर्थात् अतिथि देवता के समान होते हैं। अतः कभी भी अपने घर आए अतिथि का अनादर नहीं करना चाहिए। अतिथियों का सत्कार हमारी सनातन संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। स्वामी विवेकानंद के द्वारा सुनाई गई कथा का ब्राह्मण और उसके परिवार के सदस्य इस विषय से पूर्ण रूप से परिचित थे। साथ ही साथ तोड़ो कारा उपन्यास के तीसरे खंड में वर्णित ब्राह्मण और उसके परिवार द्वारा यह भी दर्शाने का प्रयास किया है कि माता-पिता, पुत्र और पुत्र वधु के वास्तविक कर्तव्य क्या होने चाहिए। सनातन चिंतन के अनुसार परिवार के समस्त सदस्यों को एक -दूसरे का प्रतिपूरक होना चाहिए। साथ ही यह भी बताया गया है कि दान निष्काम चित्त से किया जाना चाहिए। धर्म के दृष्टिकोण से दान में केवल देने की भावना है। बदले में कुछ पाने की भावना नहीं होनी चाहिए। मनुष्य को चाहे खाद्यान्न हो या कुछ और हो किसी को कुछ देते समय या भोजन कराते समय मन में यह भावना कभी नहीं होनी चाहिए कि बदले में उसे भी कुछ मिलेगा।

स्वामी विवेकानंद की मान्यता थी कि अगर कोई किसी व्यक्ति को दो पैसे दान में देता है तो इसके लिए उसे मन में यह अहंकार कभी नहीं पालना चाहिए कि बहुत बड़े दानी हैं बल्कि उसे व्यक्ति के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि वह था इसलिए दान कर पाया था। उस व्यक्ति के प्रति आभार व्यक्त करना चाहिए। यहाँ पर बात हो रही है जब वस्तु का दान करते हैं तो प्रतिदान की आशा नहीं रखनी चाहिए। तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के तीसरे खंड में लेखक नरेंद्र ने स्वामी विवेकानंद के द्वारा जिस ब्राह्मण की कथा कहलवायी है वह स्वयं या उसकी पत्नी, पुत्र, और पुत्रवधु उनके घर आए भूखे-प्यासे व्यक्ति को जोकि वास्तव में धर्म था और उनके घर भोजन करने आया था वे अगर यह सोचते कि सभी हिस्से

का भोजन इस अतिथि को खिलाकर सभी को क्या फ़ायदा होगा ? तो क्या स्वर्ग से आने वाले विमान में चढ़कर स्वर्ग जा सकते थे ? कभी नहीं। यह प्रसिद्ध कथा स्वामी विवेकानंद ने अलवर के लोगों को तब सुनाई थी जब वे अलवर में भारत भ्रमण करने के दौरान पहुँचे थे। इस उपअध्याय में तत्कालीन भारतीय समाज की स्थिति पर चर्चा हो रही है। उस समय के भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति काफ़ी दयनीय थी। उन्हें शिक्षा से भी वंचित रखा जाता था। इस उपअध्याय में स्वामीजी की छोटी बहन योगेन्द्रबाला की चर्चा की गई है। जिन्होंने अत्याचार से तंग आकर आत्महत्या कर लिया था। अब इस विषय पर स्वामीजी के गुरुभ्राता स्वामी स्वामी तुरीयानन्द की विचारधारा का भी यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। स्वामी तुरीयानन्द के विचारो को लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है। लेखक लिखते हैं कि "योगेन्द्र का यह बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। स्वामी तुरीयानन्द बोले, यह स्वामी को ऐसी पीड़ा देगा कि स्वामी सारी नारी जाति का हित करने के लिए कुछ न कुछ असाधारण कार्य करेंगे"। ठीक इसी प्रकार स्वामी शारदानंद की विचारधाराओं को भी देखा जाना चाहिए। वे कहते हैं कि "बात केवल योगेन्द्र की नहीं, उस कष्ट की है जिसके कारण योगेन्द्र ने आत्महत्या की। यदि वह पूर्णायु होकर जाती अथवा किसी रोग के कारण देह छोड़ती तो और बात थी। वह तो मानव द्वारा निर्मित परिस्थितियों के कष्ट को सहन नहीं कर पाई और उसने प्राण त्याग दिए। स्वामी अपनी बहन के माध्यम से सारी नारी जाति की असहायता का अनुभव कर दुखी है"।[23]..

स्वामीजी के गुरुभ्रातागण भी स्वामीजी की सर्वव्यापक प्रवृत्ति से परिचित थे। आलोच्य उपअध्याय में मैं समाज, उससे जुड़ी हुई संस्कृति और दर्शन के बारे में बात कर रहा हूँ। हिन्दू समाज जातियों और वर्गों में बाँटा हुआ है। स्वामी विवेकानंद के समकालीन भारत में आज के भारत से भी जातिवादी भावना और भी ज़ोरों पर थी। और शिक्षा भी जाति आधारित बना दिया गया था। आज तो निम्न जाति के लोगों को शिक्षा की सुविधाएँ मिल रही हैं लेकिन स्वामी विवेकानंद के समय के 19वीं शताब्दी के भारत में शिक्षा की रोशनी से उन्हें बाक़ायदा वंचित रखा जाता था। अच्छी शिक्षाओं को उच्च वर्गों तक ही सीमित रखा जाता था। शिक्षा का वितरण समाज के सभी वर्गों के लोगों के बीच नहीं हो

पाता था। शिक्षा केवल उच्च वर्गों तक ही सीमित रखा जाता था।शिक्षा से तत्कालीन समाज के निम्न वर्गों को किस प्रकार वंचित रखा जाता था इसका एक बहुत ही अच्छा उदाहरण लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने विवेकानंद के जीवन पर लिखित उपन्यास "तोड़ो कारा तोड़ो" जिसके कुल छ खंड हैं उसके तीसरे खंड में जिसका शीर्षक 'परिव्राजक' उसमें दर्शाया है। यह बात तत्कालीन राजपूताना और आज के राजस्थान राज्य की है। राजपूताना प्रांत में दरोरा नामक एक निम्न जाति है जिसे शिक्षा से वंचित रखा जाता था। दरोरा जाति के लोगों को शासक वर्ग के लोगों के द्वारा ही शिक्षा से वंचित किया जाता है। अगर कोई शिक्षित हो जाएगा तो अपने लिए आरक्षित कामों को नहीं करेगा। राजकर्मचारियों के इस अन्याय की जानकारी ही राजा को नहीं थी। देखते हैं स्वामी अखंडानंद जब यह जानना चाहते हैं कि दरोरा जाति के बच्चे स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए क्यों नहीं जाते हैं मुखिया बताता है कि हमारे बच्चे जब चार-पाँच साल के हो जाते हैं तभी से राजमहल में पहरेदारी आदि कामों के लिए आरक्षित कर लिया जाता है। बचपन से ही जब इनके रोज़गार निर्धारित हो जाते हैं तो फिर पढ़ने-लिखने की क्या आवश्यकता है। इस बात की जानकारी जब राजा अजितसिंह को होती है तो वे उनके लिए तत्काल शिक्षा के लिए क़ानून बनाने का आदेश देते हैं और छात्रों के लिए विद्यालय में दोपहर के भोजन की व्यवस्था स्कूल में ही कर देते हैं। विद्यालय की शिक्षा और दोपहर के समय के भोजन की व्यवस्था राजा के द्वारा ही मुफ़्त कर दिया गया था। इस प्रकार स्वामी अखंडानंद (गंगाधर) के अथक परिश्रम के फलस्वरूप दरोरा जाति के लोगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था हो गई थी।

अगर एक समाज होगा तो उससे जुड़ी संस्कृति भी होगी। प्रत्येक धर्म एवं समाज की अपनी अलग-अलग संस्कृति होती है। मनुष्य प्रकृति की संतान है वह उसके परिवेश से, उसके नियमों से कभी भी बाहर नहीं जा सकता। व्यक्ति जहाँ भी रहता है वहाँ के प्राकृतिक परिवेश के आधार पर व्यक्ति को अपने समाजिक और धार्मिक संस्कारों का निर्माण करना पड़ता है। धर्म और संस्कृति के निर्माण में प्राकृतिक संसाधनों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।इतना ही मानवीय समाज का खाद्य पदार्थ भी प्राकृतिक परिवेश के ऊपर ही निर्भर करता है और धीरे-धीरे वह खाद्य पदार्थ उसके धर्म और संस्कृति के अंग बनकर रह जाते हैं। जिस क्षेत्र का प्राकृतिक परिवेश जिस प्रकार होता है उसे आधार बनाकर वहाँ पनपने

वाले पंथ और समाज अपने-अपने धार्मिक संस्कारों का निर्माण करते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'प्रकृति वास्तव में महान प्रेरक होती है। प्रकृति की तुलना किसी से नहीं की जा सकती है'। हिंदूधर्म का नाम वेदान्ती ही उचित है। वैदिक दर्शन ही हिंदू दर्शन है।वेदों को तो पूरा का पूरा हिंदू समाज ही स्वीकार करता है। स्वामीजी ने अमेरिका के शिकागो में व्याख्यान देते हुए जब उन्होंने हिंदू धर्म से एक आलेख का वाचन किया था जिसका वाचन करते हुए उन्होंने हिंदूधर्म की प्राचीनता को दर्शाया था तथा यह कहा था कि "शाश्वत वाक्य वेद से उन्होंने अपने धर्म को प्राप्त किया है"।[24]..

धर्म के विषय पर बात करते हुए स्वामी विवेकानंद का कहना था कि "धर्म वह है जो शारीरिक बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति दे, जो आत्म सम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहायता करे। धर्मगत ज्ञान यदि व्यक्ति को प्रमादी और निष्क्रिय बनाता है तो उसे त्याग देना चाहिए। तुम्हारे रामकृष्ण की चिंता कौन करता है ? तुम्हारी भक्ति और मुक्ति को कौन देखता है ? तुम्हारे धर्म ग्रंथों की परवाह किसे है ? अगर मैं अपने देशवासियों को कर्मयोग में दीक्षित कर सकूँ और इसके लिए मुझे हज़ारों बार नरक जाना पड़े तो मुझे प्रसन्नता होगी"।[25]..

स्वामी विवेकानंद की इस विचारधारा का उल्लेख हिंदी के प्रख्यात विद्वान और इतिहासकार डॉ बच्चन सिंह ने अपने साहित्य के इतिहास की पुस्तक 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में अंग्रेज़ों के भारत में आने के बाद बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों पर चर्चा करते हुए रामकृष्ण मिशन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए धर्म के बारे में स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। यानी कि स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण से धर्म केवल पूजा-पाठ ही नहीं है। बल्कि वह इससे बढ़कर है। जो हमारे देश, समाज और संस्कृति की आत्मसम्मान की रक्षा कर सके, जो हमें सकरात्मक शारीरिक और मानसिक बुद्धि प्रदान कर सके, जो मानव में आध्यात्मिक शक्ति का जागरण ला सके, वहीं वास्तविक धर्म है। वे बार-बार कहा करते थे कि मान और अपमान होता है देश का, समाज का और देश और समाज से जुड़ी हुई संस्कृति का। व्यक्ति का मानपमान कुछ नहीं होता। ठीक यहीं विचार उन्होंने अपनी माँ भुवनेश्वरी देवी के निकट भी उस समय व्यक्त किया था जब इनके

गुरु का निधन हो चुका था और इनके अनेक गुरुभाइयों को जो तब युवा थे और स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ा करते थे और सन्यास की दीक्षा ले चुके थे उन्हें उनके माता-पिता अपने-अपने घर वापस लेकर चले गए थे। क्योकि इनके माता-पिता इन्हें गृहस्थ जीवन की ओर लौटाना चाहते थे। तब स्वामीजी अपने उन गुरुभाइयों को वापस सन्यास जीवन की ओर लौटाने के लिए बार-बार उनके घर जाया करते थे और उनके पारिवारिक लोगों के द्वारा बाकायदा अपमानित भी हुआ करते थे। तब एक दिन जब उनकी माता भुवनेश्वरी देवी ने उनका इस प्रकार अपमान होता हुआ देखकर दुखी होकर पूछा था कि जिन घरों में उनका इतना अपमान होता है वे इन सब घरों में बार-बार क्यों जाते हैं ? तो उन्होंने भुवनेश्वरी देवी से कहा था कि "मानापमान होता है देश का, समाज का , संस्कृति का। व्यक्ति का मानापमान क्या होता है"। स्वामी विवेकानंद की इस कथन पर नरेंद्र कोहलीजी की एक उक्ति है वह यह कि "लोग अपने मान-अपमान के बारे में ज्यादा सोचते हैं"।[26]..

आलोच्य गद्यांश के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वामीजी अपने कर्म के मार्ग में निरंतर गतिशील रहने को ही मानव समाज का सबसे बड़ा धर्म मानते थे।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या 1

2 हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृष्ठ संख्या 57

3 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 88

4 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 14

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार पृष्ठ संख्या 23

6 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 9

[7] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 38

[8] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 71

[9] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 72

[10] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार पृष्ठ संख्या 75

[11] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार पृष्ठ संख्या 77

[12] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार पृष्ठ संख्या 48

[13] A RAGHURAMARAJU, DEBATING VIVEKANANDA A READER EDITED Page no. 14

[14] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार पृष्ठ संख्या 195

[15] स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या 1

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 92

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 91

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 168

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 78

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 40

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 40

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 41

[23] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 67

[24] स्वामी नित्यमुक्तानंद स्वामी विवेकानंद वाणी और रचना प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या 11

[25] डॉ बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 30

[26] Dr. Narendra Kohli in youtube, Ramakrishna Mission, Rajkot https://www.youtube.com/watch ?v=3GCcaC-CSIo&t=1528s